परम देव दर्शन

लेखक
विश्वामित्र सत्यार्थी
महर्षि दयानन्द योगधाम
गली नं.8, एस.जी.एस. नगर
एन.आई.टी., फरीदाबाद (हरियाणा) 121001

सरस्वती साहित्य संस्थान
295 जागृति एन्कलेव, विकास मार्ग, दिल्ली-92
दूरभाष 22152435,

वृद्धावस्था आने पर सुखी होने के कुछ उपाय

1. प्रत्येक मनुष्य के जीवन में बुढ़ापा अवश्य ही आता है, इससे कोइ मनुष्य बच नहीं सकता अतः बुढ़ापा आने पर दुखी नहीं होना चाहिये बल्कि खुशी से स्वागत करना चाहिये इसी में भलाई है। (पुस्तक "बुढ़ापा कैसे बिताएं" पढ़े)
2. सभी लोग बुढ़ापे में अपने भरोसे वाले होने चाहियें।
3. कुछ पैसा अपने नाम पर सरकारी माध्यम से ज़रुर होना चाहिये।
4. पचास-साठ वर्ष के बाद सांसारिक रिश्ते कम कर देने चाहियें।
5. बुढ़ापे में स्वाद से बचना चाहिये 6. तीन बातें ध्यान में रखें– 1 ज्यादा बोलना नहीं 2. कौन क्या कर रहा है वास्ता कम रखें 3. ऊंची आवाज़ में बोलना खतरे से खाली नहीं।
7. बुढ़ापे में सामाजिक काम ही सहायक होते हैं।
8. घर के हर कार्य में दख़ल नहीं देना चाहिये, मांगने पर ही सलाह देनी चाहिये।
9. दान देने की इच्छा हो तो कल पर मत टालो। तथा दान सुपात्र को ही देना चाहिये।
10. बुढ़ापे में अकड़ दुखदायी होती है।
11. जितना हो सके शांत रहने की कोशिश करनी चाहिये।
12. प्रातःकाल और सायंकाल किसी पार्क आदि में घूमने अवश्य जायें, इसमें कभी आलस न करें इससे शरीर चुस्त और स्वस्थ रहता है।
13. किसी धार्मिक स्थान में अवश्य जायें इससे मस्तिष्क शांत रहता है।
14. अपने से छोटों को यथायोग्य सम्मान और प्यार देना चाहिये तभी वृद्ध व्यक्तियों को सम्मान और आदर मिल सकता है।

इन सब उपायों से वृद्धावस्था बड़े सुख और आराम से कट जाती है और घर वाले भी सम्मान करते हैं।

लेखिकाः

जानकी देवी प्रधाना,
स्त्री आर्य समाज, प्रशान्त विहार, दिल्ली

परम देव दर्शन

: लेखकः

विश्वामित्र सत्यार्थी

महर्षि दयानन्द योगधाम
गली नं. 8, एस.जी.एस. नगर
एन.आई.टी., फरीदाबाद (हरियाणा) 121001

सरस्वती साहित्य संस्थान

295, जागृति एन्क्लेव, विकास मार्ग, दिल्ली - 92

दूरभाष : 22152435 - 22160531

परम देव दर्शन

लेखक : विश्वामित्र सत्यार्थी

महर्षि दयानन्द योगधाम
गली नं. 8, एस.जी.एस. नगर
एन.आई.टी., फरीदाबाद (हरियाणा) 121001

प्रथम संस्करण : जुलाई, २००६ ई०

मूल्य : १८ रूपये - (Rs. 18)

प्रकाशक :

सरस्वती साहित्य संस्थान
295, जागृति इन्क्लेव, विकास मार्ग, दिल्ली - 92
दूरभाष : 22152435, 22160531

अक्षर संयोजनः नीलम ऑफसेट प्रोसेस दिल्ली - 110092 फोन. 22473656

दिव्य अभिमत

देव शब्द से तल् प्रत्यय करने पर देवता शब्द की सिद्धि होती है। देव शब्द का अर्थ देनेवाला, चमकनेवाला, द्युलोक में प्रकाशित होने वाला कहा गया है। उक्त निरुक्ति के अनुसार संसार में जड़, चेतनरूप में दो प्रकार के देवता होते हैं। यजुर्वेद में अग्निर्देवता, वातोदेवाता, सूर्यो देवता, चन्द्रमा देवता आदि जड़ देवता स्वीकार किए गये हैं। साथ ही-

द्वितीय परिभाषा -"विद्वांसो वै देवाः" अर्थात् सदाचारी-धर्मनिष्ठ विद्वान् भी देवता है। इसी प्रकार माता-पिता, आचार्य, अतिथि, योगी, ऋषि, मुनि आदि सत्पुरुष चेतनदेवों की कोटि में आते हैं। इसके अतिरिक्त सृष्टि के सत्वप्रधान पदार्थ, जो उपभोग करने पर या चेतन देवों के सम्पर्क में आने पर दानव से मानव तथा मानव से देवता बनने की अभि प्रेरक-प्रेरणा श्रद्धालु-जिज्ञासु को प्राप्त कराता है, तो पदार्थ एवं प्रेरयिकता उसके लिए देवता है।

इस ग्रन्थ के लेखक श्री विश्वामित्र सत्यार्थी ने सृष्टिगत जड़-चेतन देवों की प्रेरणा से परे परमदेव परमात्मा से विभिन्न प्रकार की प्रेरणा प्राप्त करने का चिन्तन प्रस्तुत किया है।

"बहुदेवतावाद" पाश्चात्य् एवं कुछ पूर्वात्य विद्वानों की मान्यता रही है कि वेदों में अनेकों देवी-देवताओं की अर्चना-प्रार्थना का वर्णन हुआ है।

परन्तु वैदिक विद्वानों ने उस मान्यता का निराकरण

प्रस्तुत किया है कि वेदों में अनेक देवों का वर्णन नहीं है, वरन एक देवता के शक्ति एवं गुणभेद से अनेक नाम हैं।

एकमेव, उसी दिव्य देव (परम देव) परमात्मा के अग्नि, मित्र, वरुण, मातरिश्वा, वायु, आदित्य आदि अनन्त गुणवाचक नाम हैं। उन्हीं विभिन्न शक्तियों से विभिन्न प्रेरणा लेकर, विभिन्न गुणों एवं शक्तियों का पुञ्ज मानव बन सकता है।

उपासना की प्रमुखताः गुणों का सर्वांगपूर्ण धारण करना उपासना पद्धति से ही संभव है। अतः इस पुस्तक के अध्ययन से आस्थावान साधक-साधिकाओं को ईश्वरीय गुणों के चिन्तन-मनन एवं धारण करने की आंतरिक प्रेरणा प्राप्त हो, तो लेखक का लेख-चिन्तन, कविताकरण आदि उत्तम भावनाएं सफल हो सकेंगी।

श्री सत्यार्थी जी के इस चिन्तन की मैं प्रशंसा करता हूँ कि कृशकाय होते हुए मन, बुद्धि से सबल होकर, निर्बल-निराशों को प्रोत्साहित करते रहते हैं। साथ ही पाठकों के लिए भी साधना मार्ग गामी बने रहने की मंगल कामना करता हूँ।

शमित्योम्-

दिव्यानन्द सरस्वती (अध्यक्ष)
पातंजल-योगधाम, आर्य नगर, हरिद्वार (उत्तरांचल)
महर्षि दयानन्द योगधाम, फरीदाबाद (हरियाणा)

परमदेव - दर्शन की अभिलाषा

परमदेव परमात्मा के दिव्य दर्शन की अभिलाषा-आकाँक्षा प्रत्येक आस्तिक-आध्यात्मिक मानव के मन में, अनादि काल से चली आ रही है एवं उनमें यह एक अकिञ्चन लेखक भी है।

मानव के द्वारा परिकल्पित देवी-देवताओं के प्रत्यक्ष दर्शन करने-करवाने की घोषणायें करने, विज्ञापनों के छपवाने, उनके नाम से नगाड़े बजाने के अतिरिक्त ध्वनि-वर्धकों से उनके गुण-गान भी किए जाते हैं। उन में कौन सा वास्तविक एवं अवास्तविक है, और कहाँ, कैसे एवं किस माध्यम से उसे प्राप्त करें, इस पर मत-भेद, झगड़े-रगड़े एवं रक्त-पात अनेकशः होते रहते हैं, जो कि धार्मिकता के नाम पर एक अधार्मिक विडम्बना है।

उपर्युक्त वाद-विवाद को सुलझाने के लिए, इस विषय से सम्बन्धित वेद-मन्त्रों का एक लघु संचयन 'परमदेव-दर्शन' पुस्तकाकार में प्रकाशित किया गया है; जो कि एक स्वतः प्रमाण अथवा सत्याधारित निष्कर्ष है।

साहित्य-प्रेमी सुविज्ञ पाठको! आप "परमदेव-दर्शन" के स्वाध्याय के उपरान्त, इसके संबंध में अपने अभिमत से अवगत करायेंगे, ऐसी आप से अपेक्षा है।

विनीत

विश्वामित्र सत्यार्थी
एम.ए. (इतिहास) बी.टी.
बी.ए. (ऑनर्स) संस्कृत, प्रभाकर

निवास : 3 सी 244
एन.आई.टी. फरीदाबाद (हरियाणा)-121001
दूरभाष : 2414673

१ देव काव्य का दर्शन

ओ३म् अन्ति सन्तं न जहाति अन्ति सन्तं न पश्यति।
देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति॥

॥ अथर्व १०.८.३२ ॥

शब्दार्थ

(अन्ति सन्तम्) सर्वान्तर्यामी-सर्वव्यापक परमेश्वर जो मानव का सदैव हृदयस्थ, अभिन्न एवं सर्वदा-सर्वथा समीपस्थ है, वह उसे (न जहाति) कदापि नहीं त्यागता है अथवा दूर नहीं होता है। यह एक परम अचम्भा है कि (अन्ति सन्तम्) सदैव अतीव समीप-अभिन्न परमात्मा को, यह आत्मा (न पश्यति) देखता नहीं है अथवा उसके दर्शन से वंचित है। ईश्वर के दर्शनाभिलाषी उपासक-साधक एवं भक्त-विरक्त को चाहिए कि वह, उसके लिए (देवस्य काव्यम्) परमदेव परमात्मा के वेदरूपी काव्य का स्वाध्याय करके, उस का सत्य रूप जाने अथवा साक्षात् सृष्टि-काव्य की संरचना को (पश्य) प्रत्यक्ष देखे; जो कि अक्षर-अक्षय परमेश्वर की (न ममर) न मरने वाली तथा (न जीर्यति) जीर्ण नहीं होने वाली अजर काव्य-कृति है।

कवितार्थ

परमात्मा के आत्मा सन्निकट रहता है,
स्वतः सर्वदा उससे दूर नहीं जाता है।
परम अचम्भा एक निरन्तर बना रहता है।
स्वयं संदर्शन का अवसर नहीं पाता है।
प्रकट वेद-काव्य अजर, अमर रहता है,
साधक सतत सत्यान्वेषी बन जाता है।
प्रत्यक्ष सृष्टि में सर्व सृष्टा रहता है,
सत्यद्रष्टा उसे सर्वत्र देख पाता है।

भावार्थ

सर्वान्तर्यामी एवं सर्वव्यापी परमेश्वर की मनुष्य इतस्ततः अपनी समझ के अनुसार खोज करने में संलग्न है। उसके लिए वह अन्यों से मार्ग को पूछता तथा इधर-उधर भटकता-फिरता है। एक कथानक के अनुसार अपने घर में खोई हुई सूई की घर से बाहर सार्वजनिक मार्ग पर खोज करने वाली तथा पथिकों से सहायता मांगने वाली, एक मूर्ख बुढिया के समान अपने घर अथवा कुटिया में उसे खोजने का कदापि प्रयास नहीं करती है। यही दशा परमात्मा को खोजने वाले एक अज्ञ-अन्ध साधक की है जिसे यह लेशमात्र ज्ञान नहीं है कि परमात्मा निरन्तर मानव के मन-मन्दिर में विराजमान, आत्मा के अतीव समीप तथा उसका आत्मीय अभिन्न सखा है। उसे उपदेश-सन्देश दिया गया है कि परमदेव के दिव्य-दर्शन प्राप्त करने के लिए, वह उस के परमज्ञान के भण्डार वेद-काव्य तथा साक्षात् सृष्टि-काव्य का स्वाध्याय-सन्दर्शन करे; जो कि सदैव अजर-अमर रहता है।

विशद विचार - इस मन्त्र, उसके शब्दार्थ, कवितार्थ एवं भावार्थ से जुड़ी हुई चिन्तन की अजस्र धारा को प्रवाहित करने के लिए क्रमशः अग्रसर हो रहे हैं।

परमात्मा एवं आत्मा अभिन्न हैं :-सर्वात्माओं की आत्मा को परमात्मा कहा गया है, जो सर्वान्तर्यामी, सर्वव्यापी एवं सार्वभौम शाश्वत सत्ता है। परमात्मा का सर्वात्माओं में समावेश होने से वे अभिन्न हैं अर्थात् परस्पर सन्निकटस्थ हैं। आत्मा सदैव समीस्थ होने से उसे कदापि नहीं त्यागता अथवा उससे दूर नहीं होता है। उससे दूर हुआ जाता है; जो कि एकस्थ हो, जबकि परमात्मा एकस्थ न हो करके, सर्वव्यापी सत्ता है।

चरमचक्षु, उस परमचक्षु परमात्मा को देखने में अक्षम है। परन्तु, इतने से आत्म-सन्तोष नहीं होता है अर्थात् जिज्ञासा पूर्ववत बनी रहती है। इसका समाधान आगामी पंक्तियों में उपस्थित है।

देव-काव्य का प्रत्यक्ष दर्शन :- मन्त्र में कहा गया है कि 'देवस्य पश्य काव्यम्' परमदेव के वेद-काव्य एवं सृष्टि-काव्य को देखो। वैदिक त्रैतवाद का वेद में प्रतिपादन है। समस्त समस्याओं का समाधान, इसमें समाहित है। इसका श्रद्धापूर्वक स्वाध्याय करने से ज्ञानचक्षु खुलते तथा अज्ञात का ज्ञान प्राप्त होता है। वेद में अनेकशः समझाया गया है कि परमात्मा आत्मगुहा में अवस्थित, हृदयस्थ एवं मन-मन्दिर में विराजमान एक सूक्ष्मतम अदृश्य-अनादि सत्ता है। मानव द्वारा अपनी दिव्य चक्षु के खोलने, मानस-मन्दिर में दीप जलाने, आत्म-गुहा का अन्धकार मिटाने तथा आत्मज्योति से, इस स्वयंप्रकाश परमज्योति का दर्शन होता है। उस स्रष्टा के सृष्टि-काव्य में, उसकी भव्य-नव्य-दिव्य कलाकृति की सर्वदा-सर्वथा साक्षात् मनमोहक दृष्यावली के दर्शन करने से, उस परमदर्शनीय परमात्मा के अनेक गुणों-विशेषणों का परिचय प्राप्त होता है। परमगुणवान् परमात्मा के गुणों का बिना कहे बखान एवं प्रदर्शन सर्वतः हमारी चर्मचक्षुओं के सम्मुख होता है; जो हमें स्वयं में धारण करने एवं जीवन को दिव्य-दर्शनीय बनाने के लिए प्रेरित करता है।

अजर-अमर-देव-काव्य :- परमात्मा एवं आत्मा ये दोनों अजर-अमर सत्तायें हैं। परमात्मा की वेद-काव्य तथा सृष्टि-काव्य की ये कृतियाँ भी अजर-अमर हैं। इनके माध्यम

से मनुष्य को समझाया गया है कि वह इस सत्य को समझे कि वह जर-क्षर शरीर नहीं; अपितु एक अजर-अमर आत्मा है; जो कि इस शरीर की स्वामिनी-निवासिनी एवं अधिष्ठात्री-अदिति शक्ति है। सर्वथा गुनगुनाते रहें तथा योग-साधना में स्वान्तः में चिन्तन कीजिए- "हे परमात्मा! मैं आप का अमर पुत्र आत्मा हूँ। आप सच्चिदानन्द हैं एवं मैं आनन्द से वंचित हूँ। कृपया, मुझे आनन्द की प्राप्ति करवा कर, भव-बन्धन से मुक्त कीजिए"।

आत्मा की मुक्ति के लिए दृश्य-जगत :- जगपति ने इस अति विशाल जगत् की रचना अपने भोग के निमित नहीं की है; क्यों कि वह अभोक्ता है। उस ने कर्म-भोक्ता जीवात्माओं के लिए, इस आकर्षक-दृश्यमान सृष्टि का सृजन किया है। इस के सदुपयोग-दुरुपयोग एवं भोग-योग का निर्णय करने के लिए, उसे सद्‌बुद्धि तथा वेदज्ञान भी दिया है। सदैव भोग में संलिप्त रहने से भोग-रोग, सन्ताप-विलाप एवं सुयोग्य रीति-नीति से उपयोग करने से योग-क्षेम तथा मुक्ति-युक्ति का मार्ग प्रशस्त होता है। आत्मा का परमात्मा से योग होना ही कर्मभोग से छूटने तथा मुक्ति-युक्ति की प्राप्ति है। क्रान्तदर्शी, कवि-परमेश्वर की क्रान्तदर्शी कृति वेद-काव्य एवं सृष्टि-काव्य का हम साधक भी आत्मदर्शी बन कर, उसका स्वात्मा में साक्षात्-संदर्शन करें: क्योंकि इसी में जीवन की सार्थकता है।

हृदय दर्पण में परम दिव्यदेव का दर्शन कीजिए :-

मानव-दर्शक की सुन्दर-कुरुप, स्वच्छ-अस्वच्छ, मैली-कुचैली एवं कोमल-क्रूर जैसी भी आकृति होती है, उसे वैसी ही दर्पण में दिखाई देती है। उस दर्पण पर यदि धूलि जमी हुई है, तो आकृति स्वच्छ-सुन्दर होने पर भी धूमिल दिखाई देती

है। इसी प्रकार उस में दरारें पड़ी होंगी, तो आकृति के आकर्षक होने पर भी, उस का टेढ़ा-मेढ़ा दिखाई देना स्वाभाविक है।

मानव के अन्तःकरण-हृदय को भी दर्पण कहा गया है। यह उस की अन्तर्भावना को प्रतिबिम्बित करता है अथवा उस की कृति-स्मृति-धृति के रूप में प्रकट होता है। उस परम पुनीत एवं नित्य शुद्ध-बुद्ध परमदेव का दिव्य दर्शन उसी योग-साधक के अन्तःकरण-हृदय रूपी दर्पण में होता है; जो सदैव निर्मल होता है तथा जिस पर मल-विकार एवं अज्ञान्धकार की कालिमा-धूलि की परतें नहीं जमी होती हैं।

काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहङ्कार एवं ईर्ष्या आदि की कालिमा-धूलि की परतें, इस स्वभावतः शुद्ध अन्तःकरण को मैला-कुचैला करती रहती हैं। निरन्तर योग-साधना से इस का परिमार्जन किया जा सकता है। अज्ञान, अन्धकार, एवं ज्ञात-अज्ञात भय-भ्रम की चोटें, इसे गहन आघात पहुँचाती है; जिन्हें आत्म-विश्वास, आस्था एवं आध्यात्मिकता से पराजित किया जा सकता है। हृदय-दर्पण उस प्रभुदेव का प्रदत्त एक दिव्य उपहार है, जिस में परमदिव्य परमात्मा का सन्ध्योपासना एवं योग-साधना के माध्यम से दिव्य-दर्शन करना सरल एवं सम्भव है।

शान्त, स्थिर, निर्मल नीर में, परछांई स्पष्ट दिखती है।
शुद्ध, सदैव, धवल दर्पण में, प्रति कृति स्वतः दिखती है॥१॥
शक्ति,भक्ति से पूरित मनमें, परम शान्ति अनन्त मिलती है।
शतदल सम दिव्य दर्पण में, प्रभुवर की झलक मिलती है॥२॥
शमन की सहज प्रक्रिया में, प्रतिपल ज्योति चमकती है।
शतक्रतु के भुवन दर्पण में, प्रखराभा नित दमकती है ॥३॥

ओ३म् खम्ब्रह्म

ओ३म् जिसका नाम है और जो कभी नष्ट नहीं होता, उसी की उपासना करनी योग्य है, अन्य की नहीं।

सब वेदादि शास्त्रों में परमेश्वर का प्रधान और निज नाम 'आ३म्' को कहा है, अन्य सब गौणिक नाम हैं।

सब जगत् के बनाने में ब्रह्मा, सर्वत्र व्यापक होने से 'विष्णु', दुष्टों को दण्ड दे के रुलाने से 'रुद्र' मङ्गलमय और सब का कल्याणकर्त्ता होने से 'शिव' है।

'सोऽयमन्तर्यामी' जो सब प्राणि और अप्राणिरूप जगत् के भीतर व्यापक होके सब का नियम करता है, इसलिए उस परमेश्वर का नाम अन्तर्यामी है।

'कविरीश्वरः' जो वेद द्वारा सब विद्याओं का उपदेष्टा और वेत्ता है, इसलिए उस परमेश्वर का नाम 'कवि' है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती

सत्यार्थ प्रकाश, पथम समुल्लास

२ अजरा - अमृता का दर्शन

ओ३म् इयं कल्याण्यजरा मर्त्यस्यामृता गृहे।
यस्मै कृता शये स यश्चकार जजार सः ॥

॥ अथर्व १०.८.२६ ॥

शब्दार्थ

(इयम्) यह (कल्याणी) मंगला, परोपकारिणी जीवात्मा अथवा सर्वहितकारी परमदेव परमात्मा कदापि (अजरा) जीर्ण-शीर्ण न होने वाली अथवा वार्धिक्य से अछूती नित्य शक्ति है। यह (मर्त्यस्य) मरणशील मनुष्य के (गृहे) घर-शरीर में स्थित, (अमृता) सदैव अमर एवं न मरने वाली शाश्वत सत्ता है। (यस्मै) जिस मानव के कल्याणार्थ, (कृता) इसे उस के शरीर में स्थापित किया गया है, (सःशये) वह निद्रा में मग्न है। (यःचकार) जिस मनुष्य एवं नरतन ने उसे धारण किया हुआ है, (सःजजार) वह गहन निद्रा में निमग्न रहने से, उस परम तत्त्व को नहीं जान पाता है एवं अन्त में जर-क्षर होता अथवा पूर्णतः मिट जाता है।

भावार्थ

जीवन तथा मृत्यु क्या है? मानव शरीर में जीवात्मा का संयोग जीवन तथा वियोग मृत्यु है। मनुष्य में चेतना शक्ति (आत्मा) की विद्यमानता में, उस का अस्तित्व है तथा उस के अभाव में यह भव्य भवन (शरीर) एक भूत बंगला बन जाता है। वह घिसता, मिटता, टूटता, धूलि-धूसरिता होता एवं अन्ततः भस्म की एक ढेरी बन जाता है। इस तथ्य को समझें कि जीवन की इतिश्री केवल भोग-विलास, खाने-पीने अथवा जागने-सोने में ही नहीं है। इस शरीर में एक दिव्य विभूति निवास करती है, जिसे आत्मा कहते हैं। उसे जानना, पहचानना

ही हमारा लक्ष्य है। भोग-विलास, तन्द्रा-निद्रा एवं आलस्य-प्रमाद, इसकी प्राप्ति में बाधक हैं। यह मीठा विष मानव के विकार-विनाश एवं जरा-मरण का कारण है। मनुष्य को चाहिए कि इन का परित्याग करे तथा सदैव सजग-सतर्क रहे। आत्म तत्त्व अथवा आत्मा में परमात्मा के दर्शन प्राप्त करने का यह प्रथमाधार, आवागमन के चक्कर से छूटने का उपाय एवं मोक्ष की प्राप्ति का एक मात्र शास्त्र-सम्मत साधन है।

कवितार्थ

यह तन मनुष्य का अनूप भवन है, वह मंगला निवास बनाती है।
यह भोगता जरा, क्षरण, मरण है, वह उसे तज, नव घर बनाती है॥१॥
यह तन्द्रा में रहता मगन है, वह निद्रा को तज , जग जाती है।
यह यज्ञ, योग का दृढ़ साधन है, वह साधना में मन लगाती है ॥२॥
यह अति विशाल उन्मुक्त गगन है, यह विहग विहारी बन जाती है।
यह जीवन का सार, उन्नयन है, यह कृति, धृति, ऋद्धि बढ़ाती है ॥३॥
यह परम गति का भव्य वाहन है, वह संचालिका बन चलाती है।
यह मुक्ति, युक्ति का दिव्य वरण है, वह परम आनन्द को पाती है॥४॥

विशद विचार - वदों के प्रत्येक मन्त्र में एक गूढ़ रहस्य है, जिसे आत्म सात करके, धैर्य पूर्वक एक एक पग धरते हुए, प्रोन्नति के सोपान के शिखर पर पहुँचा जा सकता है। इस मन्त्र में निहितोद्देश्य की प्राप्ति के लिए, उस में दर्शाए गए कुछ पहलुओं-बिन्दुओं एवं शब्दों-संकेतों को भी भली भांति समझना एवं उन्हें जीवन में चरितार्थ करना अनिवार्य है।

कल्याणी - मानव का कल्याण करने वाली संचेतना, मंगला एवं परोपकारिणी उस की जीवात्मा तथा सर्वहितकारी, सर्वव्यापी, परमदेव परमात्मा की सर्वान्तर्यामी सत्ता को कल्याणी कहा गया है। ये दोनों शाश्वत सत्तायें प्रत्येक जीव का, प्रत्येक

अवस्था में सर्वदा-सर्वथा कल्याण करती हैं। कभी कोई कष्ट-क्लेश होने पर, हम अल्पज्ञतावश उन्हें दोषी ठहराते हैं; जबकि उनमें दूरगामी मंगल छिपा रहता है। हमें उनके परिणाम को आस्थापूर्वक स्वीकार करने की मनोदशा बनानी चाहिए।

अजरा-अमृता:- परमात्मा एवं आत्मा, दोनों ही अजर-अमर नित्य तत्व अथवा शाश्वत सत्तायें हैं। ये दोनों सदैव अपने स्वरूप में विद्यमान रहती हैं। ये कदापि जीर्ण शीर्ण, क्षत-विक्षत्त, टूटती-फूटती एवं मिटती-मरती नहीं हैं। अन्तर केवल इतना है कि परमात्मा सर्वज्ञ, सर्वव्यापी एवं सर्वशक्तिमान् है; जब कि आत्मा अल्पज्ञ, एकदेशी एवं अशक्त है। परमात्मा सर्वात्माओं की आत्मा अथवा सर्वान्तर्यामी है। प्रथम अलिप्त एवं द्वितीय लिप्त रहती है। आत्मा कर्म करने में स्वतन्त्र, किन्तु उस का फल भोगने में परतन्त्र है। परमात्मा जन्म-मरण के बन्धन से अछूता; किन्तु आत्मा इस में बन्धा हुआ है। परमात्मा अभोक्ता एवं आत्मा इस में बन्धा हुआ है। परमात्मा अभोक्ता एवं आत्मा भोक्ता है। प्रथम निष्पक्ष न्यायाधीश है तथा द्वितीय का उस की सत्ता में लेशमात्र हस्ताक्षेप नहीं चलता है।

मर्त्यगृह :- मरणशील, मृत्यु को प्राप्त एवं मरने वाले जीवधारी अथवा मनुष्य के घर-शरीर को मर्त्यगृह कहा गया है। मनुष्य का यह शरीर पञ्चतत्त्वों का संघात अर्थात् पृथ्वी, जल, वायु, आकाश एवं अग्नि से निर्मित है तथा आत्मा के इस में निकल जाने पर ये पाँचों अपने-अपने मूल तत्त्वों में विलीन हो जाते हैं। परिस्थिति, समय एवं आयु के प्रभावाधीन यह मानव शरीर टूटता-फूटता, जीर्ण-शीर्ण, क्षतिग्रस्त एवं भस्म की ढेरी बन जाता है।

भौतिक जीवन = जन्म-मृत्यु :- आत्मा का जीव के

शरीर में प्रवेश उस का जन्म एवं उससे निष्कासन मृत्यु है। आत्मा की उपस्थिति में शरीर का अस्तित्व है तथा उसकी अनुपस्थिति को शव की संज्ञा दी गई है। यह शरीरी अर्थात् जो कि उसे सजीव एवं क्रियाशील रखती है। शरीर की उपयोगिता सर्वविदित है, यही कारण है कि उसकी सुरक्षा-स्वास्थ्य एवं विशेष देख-रेख की जाती है। यह सांसारिक गति-विधियों का साधन है एवं उसे "शरीर माध्यं खलु धर्म साधनम्" की सूक्ति से विभूषित किया गया है। शव का लेश मात्र उपयोग नहीं है, उसे व्यर्थ मान करके अग्नि को समर्पित किया जाता है एवं वह राख की एक ढेरी बन जाता है। मानव की उस के जन्म से लेकर मृत्यु तक की यात्रा एवं उसके अभौतिक-भौतिक जीवन की कहानी है।

अभौतिक-आध्यात्मिक जीवन :- शास्त्रें में भौतिक जीवन की तुलना में, आध्यात्मिक-अभौतिक जीवन को प्राथमिकता प्रदान की गई है। भौतिक सुख-साधन, भौतिकता का प्रदर्शन एवं अभौतिक साधना सुचिन्तन अभौतिकता-आध्यात्मिक रूपी अक्षय-सम्पदा का प्रतीक है। यही अस्थायी-स्थायी, अस्थिर-स्थिर, नश्वर-अनश्वर, अदिव्य-दिव्य एवं नास्तिक-आस्तिक नाम से जानी जाती है। प्रथम सांसारिकता के बन्धन में बांधती तथा द्वितीय उनसे मुक्त कराती है। एक मृत्यु का तथा अन्य मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करती है। मानव इनभें किसी को अपनाने अथवा त्यागने में स्वतंत्र है तथा उसे तदनुरूपेण जीवन में प्राप्ति होती है।

तन्द्रा-निद्रा पर विजय :-तन्द्रा-निद्रा को मृत्यु की सहायिकायें अथवा सहेलियाँ कहा गया है। इनका मीठा विष मनुष्य को जीवन-शक्ति का शोषण करके, उसे शनैःशनैः अशक्त बनाता

है। इन से उस की संचेतना कुण्ठित तथा उसकी शारीरिक, मानसिक अवरूद्ध, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक उन्नति अवरूद्ध होती है। समस्त शरीर के अवयवों को दीमक के समान खोखला एवं निष्क्रिय करती है। अपने प्रभाव से मनुष्य की भौतिक-अभौतिक प्रगति को प्रभावित करती है। इन दोनों क्षेत्रों में मनोवांछित सफलता प्राप्त करने के लिए, इन पर विजय प्राप्त करना अनिवार्य है।

भोगी सोता है तथा योगी जागता है :-प्रभुवर की भक्ति-प्रीति एवं अराधना-साधना का सौभाग्य, किसी भाग्यशाली को प्राप्त होता है। साधना की लगन जिसे लग जाती है, उसके पास तन्द्रा-निद्रा कदापि नहीं जाती है; क्योंकि उन्हें पता है कि वहां उनका स्वागत नहीं होता है। वे भोगी को अपना संगी-साथी बनाती है; क्योंकि वह उन्हें गले से लगाता है। यह वास्तविकता है कि जब भोगी निद्रा-देवी की गोद में सुख की नींद सोता है, तब एक सजग-सतर्क योगी, प्रजागृता-प्रबुद्धा परमदिव्य ईशा-देवी के चिरन्तर-चिन्तन में निमग्न होता है। ब्रह्ममुहूर्त्त की वेला में वह ब्रह्मानन्द का रसास्वादन करता है; जिसके सम्मुख समस्त भौतिक सुखोपभोग फीके एवं निस्सार हैं।

जो जागत है सो पावत है :-उपर्युक्त तथ्य की पुष्टि एवं प्रभुक्तों को भक्ति में प्रेरित करने के लिए एक लोकोक्ति का उल्लेख करना मुझे समायोचित प्रतीत होता है।

"उठ जाग मुसाफिर भोर भई, अब रैन कहां जो सोवत है।
जो सोवत है सो खोवत है, जो जागत है सो पावत है।"

सावधान! इन पंक्तियों का लेखन रात्रि के घोर अन्धकार में चोरी-डाका डालने के लिए, घर से निकलने वाले नराधमों के लिए नहीं; अपितु साधकों-सन्तों एवं भक्त-विरक्तों के लिए किया गया है, जो कि साधना में संलग्न होना चाहते हैं। प्रातः

काल की उस शान्त-अमृत वेला में, अमृत की सहज प्राप्ति होती है; जिससे आत्मा को अद्भुत तृप्ति मिलती है।

परम अचम्भा :-पूर्व की पंक्तियों के पठन-मनन के उपरान्त, एक अद्भुत भाव अथवा अचम्भा उभरा है कि एक स्थान पर तीन तत्त्व एकत्रित हैं। इस मर्त्य-मानवशरीर में आत्मा एवं परमात्मा अमर्त्य सत्तायें विराजमान हैं। विशाल ब्रह्माण्ड का एक लघु स्वरूप इस मानव के लघु पिण्ड-शरीर में सत्, रजस्, तमस् के रूप में विद्यमान हैं। आत्मा को परमात्मा से चेतना मिलती है तथा आत्मा इस अचेतन शरीर को चेतना से पूरित करता है। स्वतः अचेतन होने से शरीर का लेशमात्र महत्व नहीं है : किन्तु उसमें सन्निहित चेतना-आत्मा के कारण, उसकी सार्थकता है। यह शरीर उसकी शरीरी का कर्मक्षेत्र-कुरुक्षेत्र, भोग-योग, साधना-स्थली, एवं परमात्मा के साक्षात्-दर्शन करने का देव-दिव्य एवं भव्य-भवन है।

जीवनोद्देश्य :- जीवन-मृत्यु, सन्तानोत्पत्ति, साधन-संचय, भोग-विलास, सोना-जागना, खाना-पीना, लोक-व्यवहार के चक्कर में फंसे रहना तथा निश्चित जीवन-यात्रा को पूरा करके प्राणों का त्यागना ही जीवन नहीं है। जीवन-दाता का स्मरण-मनन करना ही वास्तविक जीवन है। आईए! इस वास्तविकता की कसौटी पर स्वयं को परखें, स्वाध्याय तथा आत्म-विश्लेषण करते हुए अपना मूल्यांकन करें।

अजरा-अमृता का दर्शन :-ईश्वर की सर्वोत्तम कृति मनुष्य का तन है। सद्बुद्धि के रूप में सम्प्राप्त विशेषता के कारण, उसे अन्य जीवों में विशिष्ट स्थान उपलब्ध है। वह सुचिन्तन एवं सत्कर्म से जीवनोद्धार की ओर प्रवृत्त होता है। वह शरीर के पालन-पोषण के साथ, उसकी संजीवनी शक्ति (आत्मा) के उद्धार के लिए आस्थापूर्वक, प्रयास करता है उसे विदित है कि

यह सदन-भवन, जर-क्षर, क्षत-विक्षत एवं जीर्ण-शीर्ण होने वाला है; जबकि उसकी निवासिनी-स्वामिनी, इन से सदैव अप्रभावी रहती है। परमात्मा एवं आत्मा दोनों ही नित्य सत्त्व है। सतत् योग-साधना करते हुए, इस दुर्लभ मानव-तन में अवस्थित आत्मा-का बोध, उसके माध्यम से परमात्मा का सत्य बोध एवं आत्म-दर्शन से परमात्म-दर्शन द्वारा जीवन को सार्थक करना ही मानव-जीवन का एकमेव एवं अन्तिम लक्ष्य है; जिसकी प्राप्ति के लिए आत्मोद्धार के आकांक्षी साधक को निरन्तर प्रेरित-जागृत, प्रबुद्ध-प्रतिबद्ध एवं साधना सन्नद्ध किया गया है।

अनादि पदार्थ

'अनादि पदार्थ' तीन हैं। एक ईश्वर, द्वितीय जीव, तीसरा प्रकृति अर्थात् जगत् का कारण, इन्हीं को नित्य भी कहते हैं। जो नित्य पदार्थ हैं उनके गुण, कर्म, स्वभाव भी नित्य है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती

स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाशः

३ अमृत ज्योति का दर्शन

ओ३म् अयं होता प्रथमः पश्यतेमं, इदं ज्योतिरमृतं मर्त्येषु ।
अयं स जज्ञे ध्रुव आ निषत्तो अमर्त्यस्तन्वा३ वर्धमानः ॥

॥ ऋ. ६.९.४ ॥

शब्दार्थ

हे मनुष्यो! (अयम्) यह आत्मा, अन्तर्ज्योति (प्रथमः) प्रथम, मुख्य (होता) दानादान कर्त्ता है। आप (इयम् पश्यत) इसे देखो, इस का साक्षात् करो। (इदम् मर्त्येषु) यह सब मरणशीलों-शरीरों में (अमृतम् ज्योतिः) अविनाशी ज्योति है। (अयम् सः) यही यह (ध्रुवः) शाश्वत एवं (आ निषत्तः) पूर्व विराजमान सत्ता, (जज्ञे) पुनः जन्मता-प्रकट होता है तथा (अमर्त्यः) अमर-अभौतिक हो कर भी (तन्वा) जीव के शरीर के द्वारा (वर्धमानः) वृद्धि-विस्तार को प्राप्त होता है।

भावार्थ

हे मनुष्यो! यह आत्मा, आत्माग्नि एवं अन्तर्ज्योति प्रथम-मुख्य होता, याज्ञिक एवं दानादान कर्त्ता है। आप स्वान्तः में स्थित इसे देखो इस का साक्षात् अथवा दर्शन करो। यह समस्त मरणशीलों-शरीरों में व्याप्त, अविनाशी अथवा न मरने वाली अमर ज्योति है। यही वह शाश्वत, नित्य स्थित एवं पूर्व विराजमान सत्ता है; जो कि पुनः जन्मता-प्रकट होता अथवा मानव के शरीर में प्रवेश करता है। यह स्वयं अमर-अभौतिक हो कर भी मानव मात्र के शरीर के द्वारा विस्तार करता, वृद्धि को प्राप्त होता एवं सदैव विद्यमान रहता है।

कवितार्थ

स्थूल शरीर से निष्कासन करके, यह अविनाशी अन्यत्र गति करता है।
स्वयमेव होता प्रवर बन करके, यह दानादान सर्वदा करता है।
सकल तन, मन में चेतना भर करके, यह सर्व विकास, विस्तार करता है।
स्वतः ज्योति दिव्य भव्य बन करके, यह साधक का दिग्दर्शन करता है।

विशद विचार - वैदिक चिन्तन परमात्मा के साक्षात्कार एवं आत्मदर्शन के लिए मानव को प्रेरित-प्रोत्साहित करता है। इससे पूर्व, वर्तमान एवं आगामी मंत्रों में, इसी विषय को प्रतिपादित किया गया है। सांसारिक साधन मानव के आत्मोद्धार में यदि सहायक बनते हैं, तो वे स्वीकार्य है अन्यथा वे अस्वीकार्य है। शरीर एवं उसके पोषक साधन अन्ततः नाशवान् हैं, अतः अनश्वर आत्मा के कल्याण को प्राथमिकता देते हुए सर्वदा इसके लिए प्रयत्नशील रहने के लिए, वेद की पावन ऋचाएं मानव का मार्ग दर्शन करती है।

अनादि दो चेतन सत्तायें - वैदिक त्रैतवाद की प्रसंगानुसार अन्यत्र व्याख्या हो चुकी है। यहां पर परमात्मा एवं आत्मा की अनादि एवं शाश्वत चेतन सत्ताओं की अति सूक्ष्म चर्चा करनी है। परमात्मा सच्चिदानन्द स्वरूप, स्वयंभू, स्वयं प्रकाश, सर्वज्ञ, सर्वान्तर्यामी, सर्वव्यापक, सर्वनियन्ता एवं सार्वभौम सत्ता है; जबकि आत्मा में असीम ज्ञान, शक्ति, दृष्टि, गति, मति एवं कृति है। परमेश्वर की कर्म-न्याय व्यवस्थान्तर्गत, इसका मानव के शरीर में एक सीमित अवधि के लिए प्रादुर्भाव होता है।

आत्मा द्वारा मानव तन-तन्त्र का विकास-विस्तार - यह आत्मा एक अदृश्य-अदिति एवं प्रचेतक-प्रेरक अविनाशी संचेतना है। जिस शरीर में यह अवस्थित है, वह नश्वर एवं

जड़ है। इस के समस्त अवयवों में, इसकी गति-शक्ति प्रवाहित हो रही है। यही मन बुद्धि एवं हृदय तन्त्रों को झंकृत करती है। आंख, कान, नाक, मुख एवं त्वचा में, इसके कारण स्पन्दन होता है। पाचन तन्त्र की जठराग्नि को, यह आत्माग्नि प्रदीप्त करती है। नेत्रों की दृष्टि शक्ति में इसी की चमक दमक विद्यमान है। ब्रह्माण्ड में संव्याप्त पंचतत्वों का घनत्व, यह मानव का अद्भुत पिण्ड-शरीर, इस की स्वामिनी/शरीरी के कारण अस्तित्व में रहता है। इसका विस्तार-विकास एवं शक्तियों का सदुपयोग, इसी चेतना शक्ति के कारण हो रहा है।

आत्मा अविनाशी एवं तन-मन-साधन नश्वर हैं :- अविनाशी-अदृश्य आत्मा के कारण ही मानव का अस्तित्व है तथा उसके पालन पोषण एवं विकास-विस्तार के निमित्त प्रयुक्त होने वाले सुख-साधन नाशवान हैं, यह एक विचित्र किन्तु परम सत्य है। इसी लिए वेद-शास्त्र मानव को चेतावनी देते हैं कि नष्ट होने वाले साधनों के संचय में अपनी शक्ति-मति का अपव्यय न करते हुए, इस अनश्वर आत्मा-सम्पदा की रक्षा कीजिए। भौतिक-क्षणिक एवं क्षत-विक्षत होने वाले साधनों की चकाचौंध से बचते हुए अभौतिक-आध्यात्मिक, शुद्ध-बुद्ध आत्मत्त्व की प्राप्ति एवं उसके दिव्य-भव्य ज्योति के दर्शन के लिए कृत संकल्प होवें।

अमृत ज्योति का दर्शन कीजिए :- परमात्मा सम्पूर्ण मृत ज्योति स्वरूप है एवं उसकी आंशिक देन सर्वात्माओं को सम्प्राप्त है। मानव के अन्तःकरण में, यह अमर दिव्याभा विराजमान है, किन्तु यह अभागा उसके दर्शन से वंचित है।

यह सर्वविदित वास्तविकता है कि चर्म चक्षुओं से केवल

भौतिक वस्तुयें दिखाई देती हैं। दुर्भाग्यवश एक जन्मजात नेत्रहीन व्यक्ति, इस प्राकृतिक देन से वंचित रहता है। अभौतिक तत्त्व ठोस नहीं होने से, बाहरी नेत्रों से नहीं दिखाई देते हैं; अपितु उनकी केवल अनुभूति होती है। एक नेत्रहीन व्यक्ति के समान, अन्तर्दृष्टि से विहीन एवं ज्ञानशून्य मनुष्य के लिए भी अभौतिक-अतिसूक्ष्म तत्व का दर्शन एवं उसकी अनुभूति असम्भव है। अज्ञानान्धकार एवं मलविकार के पर्दों के आत्मदृष्टि से हटते ही, उसे उसका साक्षात् अथवा दिव्य दर्शन हो जाता है। अमृत ज्योति के दर्शनाभिलाषिओं को इसके लिए योग-साधना का सुपथिक बनना पड़ता है। इसी जीवन में इसी क्षण से तुरन्त इस के लिए कटिबद्ध हो जाईए एवं परम पिता परमात्मा से विनम्र प्रार्थना के साथ-सत्प्रयास का सामर्थ्य भी मांगिए; क्योंकि उसकी अपार अनुकम्पा से परमदेव परमात्मा एवं आत्मा की अमृत ज्योति का दर्शन प्राप्त करना संभव हो सकता है।

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः *॥ योगदर्शन १०१ ॥*

बाहरी वृत्तियों के निरोध-रोकने को योग कहा गया है। सतत अभयास से अन्त में चित्त एकाग्र हो जाता है एवं उसे दीर्घकाल तक बाहरी विषयों का भान नहीं होता है।

दया-द्रष्टुः स्वरूपवस्थानम्॥ *॥ योगदर्शन १०३ ॥*

उस अवस्था में योग साधक को अपने वास्तविक स्वरूप की पहचान होने के साथ परमदेव के दर्शन भी हो जाते हैं। आध्यात्मिक दृष्टि से यही योग का वास्तविक उद्देश्य है।

युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितुः सवे। स्वर्ग्याय शक्त्या

॥ यजु. ११.२ ॥

(वयम्) हम योगसाधक जन (युक्तेन मनसा)

योगसाधना के द्वारा मन को एकाग्र करके एवं (शक्त्या) अपने सामर्थ्यानुसार (सवितः) सर्वोत्पादक-सवैश्‍र्यप्रदाता (देवस्य) परमदेव की उपासना करते हुए (स्वर्ग्याय सवे) मोक्ष एवं परमानन्द को प्राप्त करें।

ऋते ज्ञानान्न मुक्ति :

ज्ञान के बिना मुक्ति पद की प्राप्ति नहीं होती है। यहां अध्यात्म विद्या का ज्ञान तथा प्रयोग अपेक्षित है, अन्य ज्ञान तो सांसारिक हैं। जो अध्यात्म-विद्या को समझ लेता है, उसे ईश्वर, जीवन, प्रकृति के स्वरूप का पूर्ण ज्ञान हो जाता है।

स्वामी दिव्यानन्द सरस्वती

द्वारा लिखित श्रद्धा-सोपान से उद्घृत

४ आत्मवशी द्वारा आत्मज्योति का दर्शन

ओ३म् वि मे कर्णा पतयतो वि चक्षुः, वीदं ज्योतिर्हृदय आहितं यत्। वि मे मनश्चरति दूरे आधीः, किं स्विद् वक्ष्यामि किमु नू मनिष्ये।।

॥ ऋ. ६.९.६ ॥

शब्दार्थ

(मे कर्णा) मेरे दोनों कान (वि पतयतः) इधर-उधर भाग रहे-सुन रहे हैं। (चक्षःवि) दोनों नेत्र विधि दृश्यों के देखने में संलग्न हैं। इस के कारण (इदम् ज्योतिः) यह ज्योति-दीप्ति (यत् हृदये आहितम्) जो मेरे अन्तःकरण में स्थापित है (इदम् वि) वह भी विविध वासनाओं -स्थानों में भाग रही है। (मे मनः) मेरा यह मन (दूरे आधीः विचरित) दूर-अतिदूर के विचारों में विचरण कर रहा है। ऐसी विचित्र अवस्था में (किम् स्वित् वक्ष्यामि) में क्या बोलूँ - कहूँ एवं (किम् उ नु मनिष्ये) क्या मनन-चिन्तन करूँ।

भावार्थ

संध्योपासना अथवा योग-साधना में बैठने पर अधिकांशतया, साधक-उपासक के साथ जो बीतती है, उसका एक मार्मिक चित्रण यहां पर किया है एवं आंतरिक पीड़ा की अभिव्यक्ति भी की गई है। हे मेरे प्रभुवर! मैं एकाग्रचित्त नहीं हो सका हूँ, क्योंकि मेरे दोनों कान इधर-उधर भाग रहे एवं शब्दों को सुन रहे हैं। मेरे दोनों नेत्र बाहरी जगत् के विविध दृश्यों के देखने में संलग्न हैं। इन के कारण मेरे अन्तःकरण में अवस्थित ज्योतिदीप्ति भी विभिन्न वासनाओं स्थानों एवं वस्तुओं में संलिप्त हो रही है। मेरा चंचल मन निकट-दूर-अतिदूर के भावों-विचारों में निरन्तर विचरण कर

रहा है। हे मेरे प्रभुवर! इस दुविधापूर्ण एवं विचित्र अवस्था में, मैं आपके समक्ष क्या बोलूँ-कहूँ, अपनी दशा-दिशा को कैसे स्पष्ट करूं तथा कैसे आपका चिन्तन, मनन एवं अराधना-साधना करूं?

कवितार्थ

मेरे कान गहन डूब रहे हैं, शब्दों के पूर्ण उद्घोषों में।
मेरी वाणी अति मग्न हुई है, प्रिय, मधुर स्वरों की लहरों में।
मेरा चपल मन बेबस हुआ है, चित्तचोर चपला की चालों में।
मेरी ज्योति निर्जीव बनी है, चलने से प्रतिकूल राहों में।
मेरी हृदयतन्त्री टूटी है, पूर्ण बिगड़ गई आघातों में।
मेरी भक्ति, साधना कुण्ठित है, भोगों, रोगों के आवेगों में।
मेरी यह गाथा दर्दभरी है, क्या कहूँ शब्द प्रश्वासों में।
मेरे भगवन्! तन, मन आहत है, कैसे सुख, शम भरूं प्राणों में?

विषद विचार :- प्रत्येक ज्ञानवान् आस्तिक आत्मोद्धार, ईशदर्शन एवं मोक्ष की प्राप्ति करने के सत्प्रयास करता है; किन्तु उनके साधना के स्तर के आधार पर इसकी प्राप्ति आधारित है। सन्ध्योपासना, योग-साधना एवं भक्ति-भजन पर बैठते ही अधिकांश जनों के साथ जो बीतती है; उसका एक वास्तविक, मार्मिक, कारुणिक एवं विचित्र दशा-दिशा का एक सूक्ष्म सा चित्रण उपस्थित किया जा रहा है। मुझे प्रतीत होता है कि यह मेरी आप बीती है एवं ऐसा ही अनेकों की एक समान अनुभूति की यह झांकी है।

साधना की स्थिति :- अपनी आयु, क्षमता एवं अभ्यास के अनुसार जब साधना के लिए बैठते हैं; तो तीन बार प्राणायाम एवं ओंकारोच्चार के उपरान्त आंख को मूंदते ही एकाग्रता के बारम्बार भंग करने वाली परिस्थितियां उपस्थित

होती हैं। इस मन्त्र में एक भक्त विरक्त अथवा साधक-उपासक ने अत्यंत कारुणिक रीति से उसे अभिव्यक्त किया है।

इन्द्रियों की चंचलता : प्रभुवर को सम्बोधित करके एक भक्त कहता है कि उसके दोनों कानों में शब्दों का अबाध घोष होता रहता है। शब्दों का शोरशराबा उसे बेचैन करता है एवं उनके ताल पर नाचने-गाने की इच्छा बलवती होती है। उसकी दोनों आंखों के सम्मुख अनेकशः स्वरूप की चित्रावली घूमती रहती है; जो कि उसे मनमोहिनी लगती आकर्षित तथा विचलित करती हैं उसके अन्तःकरण में स्थिर-स्थित यह ज्योति, इनके प्रभावाधीन बलपूर्वक बहिर्गमन कर गई है। भौतिक भोग के आवेगों से वह अस्थिर हो गई है एवं उसकी पहुंच-पकड़ से दूर भाग गई है। रही-सही कमी को इस अति-चंचल मन ने पूरा कर दिया है। यह अतीव बेगवान् प्रबल मन दूर-दूर तक अबाध गति से भागता रहता है तथा तदनुरूप अस्थिरता, उद्विग्नता एवं उत्तप्ता की निरन्तर अभिवृद्धि भी करता है।

दयनीय अवस्था :- इन्द्रियों के प्रतिकूल राहों पर चलने से मानसिक पीड़ा एवं अशान्ति पनपती-बढ़ती है। बुद्धि भ्रमित होने से सुचिन्तन की प्रक्रिया मन्द हो जाती है। शरीर जीर्ण-शीर्ण एवं भोग-रोग का घर बन जाता है। श्रवण-शक्ति एवं नेत्र-ज्योति क्षीण हो जाती है। त्रितापों का सन्ताप निरन्तर झुलसाता रहता है। आत्मा के उद्धार की प्रक्रिया में बाधायें उपस्थित होती हैं तथा आध्यात्मिक अवनति-अधोगति का द्वार खुलता है। भक्त की भक्ति की भावना कुण्ठित होती, साधना की प्रगति रूकती है एवं उसकी ज्योति निर्जीव होती जाती है। आन्तरिक पीड़ा की अभिव्यक्ति में वह करुणाक्रन्दन करता है "हे करुणानिधे!! परमकृपालो!

दयासिन्धो!! मैं आप के सम्मुख लज्जित हूँ एवं अपनी न्यूनताओं के कारण मूक अशक्त हूँ। मैं अपनी दुर्दशा-दुरावस्था कैसे व्यक्त करुँ, क्योंकि मेरे पास शब्दों का नितान्त अभाव है। मेरी वाणी अवरुद्ध है। मेरी मनन-चिन्तन की क्रिया कुन्द हो चुकी है। साधना-अराधना एवं भक्ति-उक्ति में मैं असमर्थ हो गया हूं। हे परमदेव परमात्मन्। अपने इस अमर पुत्र आत्मा का आप मार्गदर्शन करके उद्धार-उत्थान कीजिए।"

आत्मवशी बन कर आत्मज्योति का दर्शन कीजिए:- इस जीवात्मा ने एक भयंकर भूल करके इन्द्रियों को स्वतंत्र छोड़ दिया एवं उन्हें मनमानी करने की छूट प्रदान कर दी। उसने उन्हें स्वामी बना दिया एवं उदासीनतावश स्वयं दास बन गई ; जिस के दुष्परिणाम की एक झलक पूर्व की पंक्तियों में उपस्थित की गई है। उसका सुधार करके, आत्मा को इन्हें स्वयं के अधीन करके एवं उनकी मनमानी पर लगाम कसते हुए, उनसे मनोवांछित उपयोग लेना है। परमात्मा की परमज्योति एवं उसके द्वारा प्रदत्त आत्मज्योति, उसके अन्तःकरण में अवस्थित है।

योग-साधना अथवा भक्ति-भावना पूर्ण अन्तर्दृष्टि से उसका साक्षात् अथवा दर्शन करके भवबन्धन से मुक्त होकर मोक्षधाम को प्राप्त कीजिए।

अनमोल दर्शन

बाहर के पट्ट बन्द कर दे बन्दे, स्वयमेव अन्दर के सब पट्ट खोल।
बन्धनकारी तज गर धन्धे गन्दे, साधक! ओम् का नाम बोल।
बहुविध आसक्ति के तोड़ दे फन्दे, स्वान्तः में नहीं हो डांवाडोल।
ब्रह्मदेव को प्रतिपल कर वन्दे, सर्वज्योति का कर दर्शन अनमोल।

भक्त, शिरोमणि - दयानन्द के प्रभुभक्ति प्रसाद से भरे कुछ नमूने ऋषि, 'ऋग्वेद-भाष्य' में लिखते हैं -

१. "जो लोग संसार के सब कर्म करते हुए भी उस उपासना के योग्य प्रभु को एक क्षण भी नहीं भूलते, उनके मन में कभी अधर्माचरण की इच्छा भी नहीं होती।

ऋषि प्रभुभक्ति की व्याख्या का वर्णन करते हुए ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका में लिखते हैं-

२. "इस प्रकार बारम्बार अभ्यास करने से प्राण उपासक के वश में हो जाते हैं और प्राण में स्थिर होने से मन, स्थिर मन के होने से आत्मा और इन तीनों में स्थिर होने से आत्मा के भीतर जो आनन्द स्वरूप, अन्तर्यामी व्यापक परमेश्वर है, उस के स्वरूप में मग्न हो जाना चाहिए। जैसे मनुष्य जल में गोता मार कर ऊपर आता है और फिर गोता लगा आता है, इसी प्रकार अपने आत्मा को परमेश्वर के बीच में बारम्बार मग्न करना चाहिए।"

३. "ध्यान करने और आश्रय लेने के योग्य जो आत्मा में अन्तर्यामी व्यापक परमेश्वर है, उसके प्रकाश (ज्योति) और आनन्द में अत्यन्त विचार और प्रेमभक्ति के साथ इस प्रकार प्रवेश करना चाहिए कि जैसे समुद्र में नदी प्रवेश करती है।"

४. ऋषि यजुर्वेद भाष्य में लिखते हैं :- "हे मनुष्य! यदि तुमको इस लोक और परलोक में सुखों की इच्छा है तो सबसे महान् स्वयं प्रकाश, आनंद स्वरूप, अज्ञान कलेश से पृथक वर्तमान परमात्मा को जान के ही जन्म, मरण आदि दुख सागर से पार हो सकते हो। यही परम सुखदायी मार्ग है। इससे भिन्न मुक्त होने का कोई मार्ग नहीं।"

५. मेला चांदपुर" नामक पुस्तक में ऋषि मुक्ति विषय में शास्त्रार्थ करते हुए कहते हैं "जैसे माता-पिता अपने बच्चों को सदा सुखमय रखने की इच्छा और पुरुषार्थ सब करते हैं। वैसे ही परम कृपानिधि परमेश्वर की ओर जब जीव सच्चे आत्मभाव से चलता है, तब वह अनन्त शक्ति रूप अपने हाथों से उस जीव को उठा कर अपनी गोद में सदा के लिए रख लेते हैं। फिर उसको किसी प्रकार का भी दुख नहीं होने देते।"

६. संध्या के मंत्रों द्वारा ईश्वर की उपासना कैसे करनी चाहिए। ऋषि दयानंद इस संबंध में लिखते हैं -

"कृताञलिरत्यन्त श्रद्धालुभूत्वै वैर्तैमन्त्रैः, स्तुवन् सर्वकार्यसिद्धयर्थ परमेश्वर प्रार्थयेत्?

हाथ जोड़कर, अत्यंत श्रद्धालु बनकर ही इन संध्या के मंत्रों की स्तुति करता हुआ भक्त सर्वदा सब कामनाओं की सिद्धि के लिए परमेश्वर से प्रार्थना करे।"

-प्राध्यापक राजेन्द्र जिज्ञासु

द्वारा लिखित 'बहे भक्ति की धारा' पुस्तक से साभार उद्धृत

५ परम मित्र का दर्शन

ओ३म् द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्न्यो अभि चाकशीति॥

॥ ऋ. १.१६४.२० ॥, ॥ अथर्व ६.६.२० ॥

शब्दार्थ

(द्वा सुपर्णा) सुन्दर पंखों वाले दो पक्षी अर्थात् परमात्मा तथा आत्मा (सयुजा) एक साथ जुड़े हुए, मिले-जुले, अत्यन्त समीपस्थ (सखाया) परस्पर सखा समान, स्नेही वर, अभिन्न मित्रता के भाव से (समानं वृक्षं) प्रकृति अथवा शरीर रूपी एक ही वृक्ष को आधार बना करके, (परिषस्वजाते) उस में साथ-साथ निवास करते एवं अन्योन्य अभिन्न रहते हैं।। (तयो अन्यः) उन में से एक अर्थात् जीवात्मा रूपी पक्षी (स्वादु पिप्लं अत्ति) प्रकृति रूपी वृक्ष के फलों को बड़े स्वाद से खाता है अर्थात् वह स्वयं के संचित कर्म-फल के उपभोग में लिप्त रह करके, तदनुरूप सुख-दुख को भोगता है। (अन्यः) दूसरा अर्थात् परमात्मा रूपी पक्षी (अभिचाकशीति) अधिष्ठाता-अभिज्ञाता अथवा प्रत्यक्षदर्शी-साक्षी के रूप में, चतुर्दिशा से जीवात्मा की समस्त गतिविधियों-क्रियाकलापों को देखता है तथा निष्पक्ष न्यायाधीश के रूप में, उसे कर्मों का फल प्रदान करता है।

भावार्थ

परमात्मा, आत्मा, प्रकृति - ये तीनों शाश्वत सत्तायें हैं। प्रकृति, जड़, आत्मा-चेतन एवं परमात्मा सच्चिदानन्द स्वरूप

है। पमात्मा में एक 'सत् चित्त आनन्द तीन गुण हैं। प्रकृति निर्जीव होने से स्वयं भोग नहीं करती हैं, अपितु आत्मा उस का उपयोग-उपभोग करती है। परमात्मा सच्चिदानन्द होने से भोग से सर्वदा-सर्वथा अलिप्त है। जीवात्मा सकाम कर्त्ता होने से स्वयं के संचित कर्म-फल का भोक्ता है तथा परमात्मा निष्काम कर्त्ता होने से, स्वतः अभोक्ता अथवा सदैव अलिप्त रहता है। आत्मा का प्रकृति की ओर जितना झुकाव होता है, वह स्वयं के कर्म-फल अथवा सुख-दुःख को उतना ही भोगता है। उस का झुकाव जब परमात्मा की ओर होता है, तो उसे आत्मानन्द अथवा मोक्ष-सुख की प्राप्ति होती है; जो कि उस का अन्तिम लक्ष्य है। मुक्तावस्था में वह जन्म-मृत्यु आदि कष्ट-क्लेशों से विमुक्त रहता है। मोक्षावधि की समाप्ति पर, परमेश्वर की व्यवस्थानुसार, उसे पुनः जीवन धारण करना पड़ता है।

कवितार्थ

प्रकृति रूपी भव्य वृक्ष में, दिव्य सखा दो पक्षी रहते हैं।
प्रबद्ध अदृश्य एक डोरी में, स्वतः परस्पर युक्त रहते हैं।
प्रकृष्ट नित आत्म तत्त्व में, प्रबुद्ध, शुद्ध, स्निग्ध रहते हैं।
पूर्व निश्चित स्वयं क्षेत्र में, स्वतंत्र परतन्त्र वे रहते हैं।
प्रलिप्त जीव सुख, दुःख भोगों में, जीवन पर्यन्त जुटे रहते हैं।
परमेश्वर सृष्टि के यज्ञ में, निष्काम, निर्लेप, सम रहते हैं।
परमब्रह्म सर्वज्ञ दृष्टि में, सर्वदा सजग साक्षी रहते हैं।
परिपूर्ण न्याय व्यवस्था में, न्यायाधीश निष्पक्ष रहते हैं।

विशद विचारः- इस वेद मंत्र में वैदिक त्रैतवाद अर्थात् परमात्मा, आत्मा एवं प्रकृति की शाश्वत सत्ता, उनके परस्पर सम्बन्ध पर अति सुन्दर, सीमित तथा सारगर्भित व्याख्या प्रस्तुत की गई है। उसके विस्तार में न पड़ते हुए, शीर्षक को स्पष्ट करने के लिए, मन्त्र के मन्तव्य के कुछ पहलुओं को रेखांकित किया जा रहा है-

परमात्मा का स्वरूप- वेदों में परमात्मा को उसके निज एवं सर्वोत्तम 'ओ३म्' अर्थात् 'सच्चिदानंद' नाम से प्रतिष्ठित किया गया है। इस के अतिरिक्त उनके अनेक गुणवाचक नाम हैं; जिन से सुविज्ञ पाठक सुपरिचित हैं। वह सर्वज्ञ सर्वान्तर्यामी, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान्, सर्वनियन्ता, सर्वद्रष्टा, सर्वेश्वर, सर्वसाक्षी एवं सर्वन्यायाधीश है। वह स्वयंभू, स्वप्रकाश, अभोक्ता, अलिप्त एवं अखण्ड-अदिति है। वह समस्त जीवों का एक समान माता, पिता, बन्धु, सखा, विधाता, एवं मुक्ति प्रदाता है। वह सर्वान्तर्यामी होने से समस्त आत्माओं का अभिन्न एवं परमप्रिय मित्र है।

आत्मा का स्वरूपः- आत्मा 'सत् चित्' द्वित्व गुण-विभूषित है। वह एक नित्य सत्ता है। वह अल्पज्ञ, अशक्त, एकदेशी, कर्म-फल-भोक्ता, भव-बन्धन में प्रतिबद्ध एवं मोह-माया में संलिप्त जीव है। वह स्वयं के कार्यक्षेत्र में कर्म करने के लिए स्वतंत्र; किन्तु कर्मों का फल भोगने में परतंत्र है; क्योंकि इस का व्यवस्थापक एकछत्र न्यायाधीशपरमेश्वर है तथा जिसकी न्याय-व्यवस्था में किसी का हस्तक्षेप नहीं चलता है। आत्मा का प्रकृति (माया) से मोह है एवं इसका परित्याग किए बिना, उसे जन्म-मृत्यु के स्वाभाविक दुःख-दोष एवं कष्ट-क्लेश

से, परमात्मा से संयुक्त होने पर इनसे मुक्ति मिलती है।

प्रकृति का स्वरूपः- प्रकृति, पृथ्वी, जल, वायु, आकाश, अग्नि- इन पांच तत्त्वों का संघात है। यह एक शाश्वत सत्ता अर्थात् उसका अस्तित्व सदैव बना रहता है। वह स्वभावतः जड़ अथवा निर्जीव है। सजीव जीवात्मा उसका उपयोग-उपभोग करती है। मनुष्य अपनी कल्पना-शक्ति एवं कुशाग्र बुद्धि से, उसका अनेकशः परिवर्तन करता तथा लाभ उठाता है।

प्रकृति रूपी वृक्ष में परमात्मा-आत्मा का निवासः- एक अत्यन्त सुन्दर उपमा के माध्यम से परमात्मा, आत्मा एवं प्रकृति का एकत्र स्वरूप प्रस्तुत किया गया है। प्रकृति अथवा शरीर रूपी एक वृक्ष है। उस में सुन्दर पंखों वाले दो पक्षी अर्थात् परमात्मा एवं आत्मा सदैव अभिन्न मैत्री-भाव से निवास करते हैं। उन दोनों में से एक आत्मा, उस वृक्ष के फलों को अत्यन्त स्वाद से खाता है तथा दूसरा परमात्मा उन्हें नहीं खाता है। वह आत्मा को सर्वतः निष्पक्ष-निर्लेप भाव से देखता-परखता रहता है।

परमात्मा अभोक्ता एवं आत्मा भोक्ता हैः- प्रकृति अथवा शरीर रूपी वृक्ष का निर्माण सुखोपभोग के लिए किया गया हैं। उससे प्रत्येक सम्भव उपभोग की सामग्री प्राप्त होती है। यह निर्विवाद सत्यता है कि परमात्मा स्वतः अभोक्ता है अर्थात् वह उनका कदापि उपभोग नहीं करता है; जबकि आत्मा (जीव) उनका उपभोग करता है। यहां पर यह स्पष्ट करना उपयुक्त प्रतीत हो रहा है कि परमात्मा स्वयमेव अभोक्ता होने से अकाम-निष्काम है तथा आत्मा

भोक्ता होने पर सकाम है; जो उसे कर्म के साथ जन्म-मरण के बन्धन में बांधती है।

परमात्मा आत्मा का साक्षी है: - उपर्युक्त तथ्यों से अति स्पष्ट हो गया है कि परमात्मा आत्मा के सकल क्रिया-क्लापों अथवा गति-विधियों को निर्लेप-निष्पक्ष भाव से सर्वदा देखता रहता है तथा सर्वज्ञ होने से, वह तदनुरूप उसे सुख-दुख एवं लाभ-हानि के रूप में कर्म-फल प्रदान करता है; जो कि उसके वर्तमान जीवन एवं उसके भविष्य का आधार बनता है।

परमात्मा-आत्मा की मित्रता:- ब्रह्माण्ड की सकल आत्माओं का भी आत्मा-अन्तरात्मा होने से, उसे परमात्मा के नाम से सम्बोधित किया गया है। कर्मानुसार जीवों का जन्म-प्रदाता होने से, उसे माता, पिता, बन्धु एवं सखा कहा गया है। प्रायः सर्वत्र गाया जाता है-'त्वमेव माता च पिता त्वमेव। त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव। त्वमेव विद्या च द्रविणं त्वमेव। त्वमेव सर्वं मम देव-देव।" इस मंत्र में प्रकृति रूपी वृक्ष में एक साथ अभिन्न रहने से उन्हें स्नेही, सखा, प्रिय एवं मित्र कहा गया है।

परमात्मा आत्मा का परमहितकारी मित्र है :- अज्ञानता के दूर होने एवं ज्ञान की प्राप्ति से आत्मा स्वयं के अविनाशी स्वरूप को समझ लेने पर, नाशवान् शरीर एवं उससे जुड़े हुए तद्रूप भोगों से अलिप्त होकर इस अनश्वर तत्त्व के प्रदाता उस परम अविनाशी स्वरूप परमेश्वर से मित्रता-निकटता स्थापित करने की प्राथमिकता प्रदान करता है। संसारी

सम्बन्धी एवं भौतिक पदार्थ नश्वर होने से चिर-स्थायी नहीं होने से, वे स्थायी सम्बन्धी सखा नहीं हैं। परमात्मा एवं आत्मा स्थायी-अविनाशी एवं नित्य-शाश्वत सत्तायें हैं। दोनों में स्थायित्व-एकत्व होने से, वे परस्पर अक्षय-अभिन्न सखा एवं मित्र हैं।

यह वास्तविकता है कि सांसारिक संबंध परस्पर स्वार्थ प्रेरक होते हैं। वास्तविक मित्र अपनी मित्रता को स्वार्थ से नहीं जोड़ता है। परमात्मा समस्त जीवों का सर्वदा स्वार्थहीन सख-मित्र होने से उसे सर्वहितकारी कहा गया है। इसीलिए शास्त्रों में कहा गया है 'हे कल्याण के अभिलाषी साधक! सर्वहितकारी-परोपकारी परममित्र परमात्मा से अपनी मित्रता स्थापित करके मोक्ष को प्राप्त कीजिए।''

परममित्र का दर्शन कीजिए :- प्रायः किसी अपने परिचित से अनायास मिलने पर हम स्वाभावतः पूछ लेते हैं कि कहां जा रहे हो तथा अधिकांश यही उत्तर मिलता है कि अमुक को मिलने के लिए जा रहे हैं। पुजारी कहता है कि मन्दिर में जा रहा हूँ, भक्तजी का कहना है कि भगवान् की पूजा करने जा रहा हूँ, तीर्थ यात्री उत्तर देता है कि देवी-देवता से मनोकामना की पूर्ति-हेतु निकला हूँ एवं इसी प्रकार कोई आस्तिक बतलाता है कि अपने इष्टदेव के दर्शन करने के लिए जा रहा हूँ। इन सब का एकमेव निष्कर्ष निकलता है कि जो उनके पास नहीं है, उसको प्राप्त करने के लिए वे अन्यत्र जा रहे हैं। इस मंत्र में अति स्पष्ट किया गया है, हे अज्ञानी मानव! तुम्हारा सखा-सहायक, बन्धु-बान्धव एवं

परममित्र-प्रीतम परमात्मा, अभिन्न रूप से तुम्हारी आत्मा से जुड़ा हुआ है। बहिर्मुखी के स्थान पर अन्तर्मुखी बन करके, उस परममित्र परमात्मा का स्वान्तः में दर्शन करके, इस मानव जीवन को सफल सार्थक कीजिए।

निश्चित मित्र

"परमेश्वर सब जगत् का निश्चित मित्र, न किसी का शत्रु और न किसी से उदासीन है, इस से भिन्न कोई भी जीव इस प्रकार का कभी नहीं हो सकता -

जो सब से स्नेह करे और सब को प्रीति करने योग्य, इससे उस ईश्वर का नाम मित्र है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती
सत्यार्थ प्रकाश प्रथम समुल्लास

६ वरुण देव का दर्शन

ओ३म् उत स्वया तन्वा संवदे तत्कदान्वन्तर्वरुणे भुवानि।
किं मे हव्यमहृणानो जुषेत कदा मृलीकं सुमना अभिख्यम् ।।

॥ ऋ. ७.८६.२ ॥

शब्दार्थ

उपासक कामना करता है, (उत)मैं (स्वया तन्वा) स्वयं के शरीर से, स्वयं में एवं स्वान्तः में, (तत्) उस उपास्य देव के साथ (संवदे) सम्यकतया अलाप करूँ तथा (कदा नु) कब (वरुणे अन्तः) उस पूज्य वरुण के स्वरूप में (भुवानि)समाहित कर सकूँ। (किम् मे हव्यम्) क्या वह मेरी भक्तिस्वरूप हवि-भेंट को (अहृनानः) प्रसन्न हो कर (जुषेत) स्वीकार करेंगे? (कदा) कब (मृलीकम्) उस परम सुखदेव एवं सच्चिदानंद को मैं (सुमनाः) भक्ति-पूर्ण चित्त, सौम्य मन एवं पावन हृदय से, (अभिसख्यम्) उससे घनिष्ठता-मित्रता स्थापित अथवा उसके दिव्य-दर्शन कर सकूँगा।

भावार्थ

उपासक की यह हार्दिक अभिलाषा है कि उपासना-काल में ऐसी स्थिति बने कि वह स्वयं के शरीर, मन एवं अन्तःकरण से, उपास्य वरुणदेव से आलाप-बातचीत करके, अपने मन की भावना को सम्यकतया स्पष्टतया प्रकट करे तथा उसकी भक्ति स्वरूप हवि अथवा भेंट को, वह सहर्ष स्वीकार करे। वह भक्ति-विभोर चित्त, सौम्य मन, पावन अन्तःकरण से, परमसुख देव एवं आनन्द-प्रदाता वरुणदेव से, यह भी निवेदन

करता है कि यथाशीघ्र वह शुभ अवसर आए कि उससे उसकी घनिष्ठता-मित्रता स्थापित होवे एवं उसका सुदिव्य-साक्षात् दर्शन करके, वह स्वयं को कृतकृत्य कर सके।

कवितार्थ

तव उपासक प्रियवर वरुणदेव, तेरे शरण का वरण करता है।
तन्मय मन के सकल संचित भाव, तेरे सम्मुख उपस्थित करता है।
तपस्या, भक्ति, शक्ति का प्रभाव, तेरे अर्पण विनम्र करता है।
त्वमेव बन्धु, सखा मम देव-देव, तेरे सुमना दर्शन करता है।

विशद विचार :- फारसी भाषा की एक उक्ति है "कबूतर वा कबूतर, बाज का बाज"। कबूतर एवं बाज दोनों पक्षियों की आकृति प्रायः एक समान दिखाई देती है; किन्तु उनके स्वभाव में आकाश-पाताल का अन्तर है। कबूतर दाना चुगता है; किन्तु बाज माँसाहारी होने से अन्य पक्षियों पर झपटता तथा उन्हें खाता है। यही सिद्धान्त मानव मात्र पर लागू होता है। एक समान प्रकृति-प्रवृत्ति वाले मनुष्य एक साथ रहते एवं जीवन-यापन करते हैं तथा जिनका उनसे मेल नहीं बैठता है, वे उनकी संगति नहीं करते हैं। धार्मिक क्षेत्र से भी, इसका अटूट सम्बन्ध है तथा विषयानुरूप होने से, आगामी पंक्तियों में, उसका उल्लेख किया जा रहा है।

उपासक की उपासना अथवा भक्त की भक्ति में रुचि होती है :- परमेश्वर के उपासक-भक्त को, उसकी उपासना-भक्ति में रुचि होने से, वह उपासकों-भक्तों की संगति करता है एवं उसे इसी के संबंध में चर्चा प्रिय लगती

है। इस प्रवृत्ति के विपरीत जनों को, यह एक ढकोंसला लगता है तथा इसमें समय-शक्ति को लगाना व्यर्थ समझते हैं। संसार के साधनों में ही संलिप्त न रहते हुए, उनका सदुपयोग करने से साधना में कदापि बाधा नहीं आती है।

वसुदेव को द्रव्य-धन स्वीकार नहीं है :- सकल ब्रह्माण्ड के मनुष्यों को सुख-सम्पदा एवं अन्न-धन के प्रदाता वसुदेव को, इन साधनों की कदापि आवश्यकता नहीं पड़ती है; क्योंकि वह अभोक्ता, निर्लेप एवं स्वयं तृप्त परमसत्ता है। यह एक विडम्बना है कि मानव के द्वारा निर्मित निर्जीव देवी-देवताओं एवं उनकी पूजा-अर्चना करने-करवाने वाले तथाकथित पुजारी-अर्चक उसे द्रव्यादि अर्पित करते हैं। यह वैदिक सिद्धांत की नितान्त अवहेलना एवं अवैदिक प्रचलन होने से पूर्णतः वर्जित है।

भगवान् को भक्तिरूपी भेंट स्वीकार है : भगवान् को उस का भक्त प्रिय है एवं भक्त को भगवान् प्रिय है। प्रेमभाव में कोई लेन-देन अथवा लालसा-लालच की आवश्यकता नहीं पड़ती है। भगवान् अपने भक्त के भक्तिभाव से सन्तुष्ट होता है; अतः इसी रूप में उसे सन्तुष्ट करने का सात्विक प्रयास करना चाहिए। भक्ति में आत्म-विभोर हो कर, भक्त अपने भगवान् को सम्बोधित करता है-"हे मेरे प्रियतम! मेरे प्रेमाश्रुओं की धारा के रूप में टपकने वाले मोतियों एवं भक्ति-भाव से विकसित-सुवासित सुमनों को स्वीकार कीजिए। मैं अपने भावना-कामना, प्रार्थना-याचना

करता है कि यथाशीघ्र वह शुभ अवसर आए कि उससे उसकी घनिष्ठता-मित्रता स्थापित होवे एवं उसका सुदिव्य-साक्षात् दर्शन करके, वह स्वयं को कृतकृत्य कर सके।

कवितार्थ

तव उपासक प्रियवर वरुणदेव, तेरे शरण का वरण करता है।
तन्मय मन के सकल संचित भाव, तेरे सम्मुख उपस्थित करता है।
तपस्या, भक्ति, शक्ति का प्रभाव, तेरे अर्पण विनम्र करता है।
त्वमेव बन्धु, सखा मम देव-देव, तेरे सुमना दर्शन करता है।

विशद विचार :- फारसी भाषा की एक उक्ति है "कबूतर वा कबूतर, बाज का बाज"। कबूतर एवं बाज दोनों पक्षियों की आकृति प्रायः एक समान दिखाई देती है; किन्तु उनके स्वभाव में आकाश-पाताल का अन्तर है। कबूतर दाना चुगता है; किन्तु बाज माँसाहारी होने से अन्य पक्षियों पर झपटता तथा उन्हें खाता है। यही सिद्धान्त मानव मात्र पर लागू होता है। एक समान प्रकृति-प्रवृत्ति वाले मनुष्य एक साथ रहते एवं जीवन-यापन करते हैं तथा जिनका उनसे मेल नहीं बैठता है, वे उनकी संगति नहीं करते हैं। धार्मिक क्षेत्र से भी, इसका अटूट सम्बन्ध है तथा विषयानुरूप होने से, आगामी पंक्तियों में, उसका उल्लेख किया जा रहा है।

उपासक की उपासना अथवा भक्त की भक्ति में रुचि होती है :- परमेश्वर के उपासक-भक्त को, उसकी उपासना-भक्ति में रुचि होने से, वह उपासकों-भक्तों की संगति करता है एवं उसे इसी के संबंध में चर्चा प्रिय लगती

है। इस प्रवृत्ति के विपरीत जनों को, यह एक ढकोंसला लगता है तथा इसमें समय-शक्ति को लगाना व्यर्थ समझते हैं। संसार के साधनों में ही संलिप्त न रहते हुए, उनका सदुपयोग करने से साधना में कदापि बाधा नहीं आती है।

वसुदेव को द्रव्य-धन स्वीकार नहीं है :- सकल ब्रह्माण्ड के मनुष्यों को सुख-सम्पदा एवं अन्न-धन के प्रदाता वसुदेव को, इन साधनों की कदापि आवश्यकता नहीं पड़ती है; क्योंकि वह अभोक्ता, निर्लेप एवं स्वयं तृप्त परमसत्ता है। यह एक विडम्बना है कि मानव के द्वारा निर्मित निर्जीव देवी-देवताओं एवं उनकी पूजा-अर्चना करने-करवाने वाले तथाकथित पुजारी-अर्चक उसे द्रव्यादि अर्पित करते हैं। यह वैदिक सिद्धांत की नितान्त अवहेलना एवं अवैदिक प्रचलन होने से पूर्णतः वर्जित है।

भगवान् को भक्तिरूपी भेंट स्वीकार है : भगवान् को उस का भक्त प्रिय है एवं भक्त को भगवान् प्रिय है। प्रेमभाव में कोई लेन-देन अथवा लालसा-लालच की आवश्यकता नहीं पड़ती है। भगवान् अपने भक्त के भक्तिभाव से सन्तुष्ट होता है; अतः इसी रूप में उसे सन्तुष्ट करने का सात्विक प्रयास करना चाहिए। भक्ति में आत्म-विभोर हो कर, भक्त अपने भगवान् को सम्बोधित करता है-"हे मेरे प्रियतम! मेरे प्रेमाश्रुओं की धारा के रूप में टपकने वाले मोतियों एवं भक्ति-भाव से विकसित-सुवासित सुमनों को स्वीकार कीजिए। मैं अपने भावना-कामना, प्रार्थना-याचना

की हवि को आप यज्ञ रूप प्रभुवर को समर्पित करता हूँ। मेरी साधना-अराधना स्वरूपा तुच्छ भेंट को स्वीकार करके, मुझे कृतार्थ कीजिए।

भक्त-वत्सल से भक्त का प्रेमालाप होता है : दो व्यक्ति जब एकत्र होते हैं, तो वे स्वभावतः एक-दूसरे से वार्ता-बातचीत करते हैं। परस्पर विचाराभिव्यक्ति से साम्यता एवं घनिष्ठता बढ़ती है। भक्त-वत्सल भगवान् एवं उस के प्रिय भक्त का अति प्रगाढ़ एवं अदृश्य सात्त्विक स्नेह-सम्बन्ध होता है। भक्ति की मस्ती में भक्त, भगवान् की स्तुति में गीत गाता, अपनी अभिव्यक्ति करता तथा आत्मोद्धार के लिए सामर्थ्य/सम्बल मांगता है। अन्तःकरण से निःसृत मौन प्रार्थना, धीमे स्वर में निकलती, गीत-लहरी एवं उच्च कण्ठ से गूंजते-फूटते हुए पद्य-गद्य, परस्पर-प्रगाढ़ प्रेमालाप के प्रमाण हैं।

वरुणदेव से करुणामय याचना :- सांसारिक आपदा-विपदा के समय में जब समस्त प्रियजनों के प्रयास असफल होते हैं; तब असहनीय अवस्था में परमसहाय प्रभुवर से प्रत्येक मनुष्य करुणापूर्ण याचना करता है -'हे कृपालु-दयालु! मैं असंख्य सन्तापों से सन्तप्त हूं, मन अशान्त, बुद्धिनिष्क्रिय एवं आत्मा पर अज्ञानन्धकार का गहन दुष्प्रभाव है। मेरे सर्व प्रयास असफल हो गए हैं एवं कोई भी उभारने वाला नहीं है, कृपया मेरा परित्राण तथा अपने इस भक्त की नय्या को भव-सागर से पार कीजिए।

वरुणदेव के दर्शन :- करुणाकन्द, सुखकारी, दुःखहारी, भक्त-वत्सल, भव-बन्धन से मुक्ति-प्रदाता, उस करुणामय वरुणदेव की भक्ति में विभोर एकाग्र चित्त, सौम्य स्वभाव, पावन अन्तःकरण, सुमना उपासना में तल्लीन उपासक विनम्र निवेदन करता है, कि वह शुभ अवसर उसे यथाशीघ्र प्राप्त होवे, वरुणदेव से उसकी घनिष्ठता-मित्रता स्थापित होवे एवं उसका सुदिव्य-साक्षात्-सदर्शन करके, वह स्वयं को कृतकृत्य कर सके।

वरुणः परमेश्वरः

जो आप्त योगी विद्वान् भक्ति की इच्छा करने वाले मुक्त और धर्मात्माओं का स्वीकारकर्त्ता, अथवा जो शिष्ट मुमुक्षु मुक्त और महात्माओं से ग्रहण किया जाता है वह ईश्वर 'वरुण' संज्ञक है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती

सत्यार्थ प्रकाश, प्रथम समुल्लास

७ विष्णु के परम पद का दर्शन

ओ३म् तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः।
दिवीव चक्षुराततम् ॥

॥ ऋ. १.२२.२० ॥

शब्दार्थ

(सूर्यः) ज्ञानी-विद्वान् (विष्णोः) संसार के पालक-पोषक परमेश्वर के, (तत् परमम्) उस सर्वोत्तम (पदम्) मोक्ष-पद को, (आततम्) अतीव विस्तृत आकाश में फैले हुए (दिवि) सूर्य के प्रकाश की भान्ति, (चक्षुःइव) ज्ञान नेत्रों से (सदा पश्यन्ति) सदैव स्वात्मा में देखते हैं।

भावार्थ

ब्रह्म-विद्, वेदविद्, ज्ञानी-ध्यानी, धार्मिक-याज्ञिक, भक्तजन, एवं योग-साधक संसार के पालक-पोषक, विष्णु-जिष्णु के, उस सर्वोत्तम, मोक्ष-पद को प्राप्त होते हैं। जैसे अतीव विस्तृत आकाश में सूर्य का फैला हुआ प्रकाश सभी जीवों को दिखाई देता है, उसी भान्ति स्वयं के हृदयाकाश को प्रकाशित करने वाले परम सूर्य परमात्मा के प्रकाश को, वे अपने ज्ञान-चक्षुओं से सदैव स्वात्मा में देखते हैं।

कवितार्थ

सजग जन के समक्ष विस्तीर्ण नभ से, सूर्य प्रखर का दर्शन होता है।
स्वयं भक्त वर के अन्तःकरण में, सर्वादित्य का नित उदय होता है ॥१॥
सम्प्रभ विष्णु-जिष्णु के स्वरूप में, सर्वोत्तम पद का वरण होता है।
स्वतः साधक के सद्ज्ञान-चक्षु में, सर्वचक्षु का शुभ प्रकाश होता है ॥२॥

विषद विचार :- सम्बन्धित उद्देश्य की प्राप्ति के लिए, यहां पर एक स्वाभाविक-व्यावहारिक एवं सरल-सफल दिशा निर्देश उपस्थित किया गया है; जो कि प्रत्येक भक्त-विरक्त एवं साधक-अराधक के लिए परिपालनीय है।

सूर्योदय से पूर्व जागिए : सूर्योदय से पूर्व निद्रा का परित्याग करना मानव की सर्वांगीण उन्नति के लिए श्रेयस्कारी है। इस से शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक एवं आत्मिक प्रगति होती है। क्योंकि यहां पर आध्यात्मिक चर्चा हो रही है; अतः इसी के संबंध में कुछ कहा जा रहा है। सूर्योदय से पूर्व के एक मुहूर्त्त को ब्रह्मवेला कहा गया है। परमब्रह्म परमेश्वर के अराधक-साधक, इस शुभ-शान्त, अमृत-वेला में एकाग्रचित होकर, उसकी अराधना-साधना करते हुए, ब्रह्मानन्द के रसास्वादन से आत्म-तृप्ति प्राप्त करते हैं; जिसे अध्यात्म-प्रसाद कहा गया है।

सूर्य के प्रकाश का दर्शन कीजिए :- सूर्यदेव अपने प्रकाश से विस्तीर्ण आकाश, समस्त दिशाओं एवं भूमण्डल को प्रकाशित-प्रभासित करता है। उसकी प्रचण्ड प्रभा-रश्मियां अन्धकार को मिटाती एवं जीव मात्र में नवजीवन का संचार करती हैं। प्रातःकालीन उदित सूर्य की किरणों के स्नान से जीवन-शक्ति की वृद्धि होती है; जो कि प्राकृतिक चिकित्सा-पद्धति का एक अभिन्न अंग है। सूर्य के प्रकाश का दर्शन करने की शास्त्रोक्त प्रेरणा से प्राप्त होने वाले लाभ का यही संक्षिप्त वर्णन है।

स्वान्तः में सूर्य को प्रकाशित कीजिए :- प्रखरादित्य, स्वयं प्रकाश, परमसूर्य परमेश्वर द्वारा प्रदत्त प्रकाश का अंश सूर्य-चन्द्रमा आदि ग्रह-उपग्रहों को प्रकाशित करता है एवं वही

समस्त जीवों की चेतना है। सर्वात्माओं की अन्तरात्मा-परमात्मा का प्रकाश उन्हें प्रकाशित करता है; किन्तु अज्ञानांधकार के गहन प्रभाव के करण, कोई भाग्यशाली ही स्वात्म सूर्य को प्रकाशित करता है एवं इसके बिना अन्ध-कूप से बाहर निकलना असम्भव है।

विष्णु के परम पद का ज्ञान-चक्षु से दर्शन कीजिए:-

साधारण से कार्य में भी ज्ञान के अभाव में अपेक्षित सफलता नहीं मिलती है। अध्यात्मोन्नति ज्ञान के बना अति कठिन है। वेद एवं वेद-सम्मत शास्त्रों द्वारा प्रदर्शित विधियों का निरन्तर अनुष्ठान करने से शनैः शनैः कुछ प्रगति होती है। अनेक जन्मों तक योग-साधना करते हुए भक्त-विरक्त एवं योग-युक्त की अभिलाषा फलीभूत होती है। इसे सर्वोत्तम पद, परम मुक्ति, मोक्ष धाम, स्वर्ग-सुख एवं परमानन्द की प्राप्ति के नामों से विभूषित किया गया है। आईए! हम अभी से एवं आज से इस साधना-पक्ष के अनन्य साधक-पथिक बनने एवं प्रभु-भक्तों की पंक्ति-संगति के वरण की संकल्पना करें; क्योंकि विष्णु के परम पद का स्वयं में ज्ञान-चक्षु से दर्शन करने अथवा प्राप्त करने का यही एकमेव पाथेय है।

विष्णुः परमात्मा

'वेविष्टि व्याप्नोति चाराऽचरं जगत् स विष्णुः परमात्मा' चर और अचर रूप जगत् में व्यापक होने से परमात्मा का नाम विष्णु है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती

सत्यार्थ प्रकाश, प्रथम समुल्लास

८ इन्द्र द्वारा परमेन्द्र का दर्शन

ओ३म् पूषा राजानमाघृणिरपगूढं गुहा हितम् अविन्दच्चित्रबर्हिषम्
॥ ऋ. १.२३.१४ ॥

शब्दार्थ

(आघृणिः) परमेश्वर स्वयं प्रकाशमान, सर्वव्यापक,(पूषा) पालक-पोषक एवं पथ-प्रदर्शक है। (अपगूढम्) मानव की अत्यन्त गुप्त चिति, (गुहा हितम्) हृदय-गुहा में अवस्थित, (चित्रबर्हिषम्)सुस्थिरासन, भक्ति में विभोर (राजानम्) जीव-ज्योति, इन्द्रियों के राजा आत्मा को, वह सर्वान्त्तर्यामी (अविन्दत्) प्राप्त होता अथवा सर्वज्ञता से उसे जानता है।

भावार्थ

परमेश्वर स्वयं प्रकाश, सर्वदा-सर्वतः प्रकाशमान, सर्वत्र-सर्वविध प्रकाश-प्रदाता, पालक-पोषक, पुष्टिकर्त्ता, सर्वज्ञात तथा मार्गदर्शक है। मानव की अत्यन्त गुप्त चिति-चेतना, हृदय-गुहा में अवस्थित, भक्ति-प्रीति में विभोर, सुकर्मा-सुधर्मा, कृति-घृति एवं साधना-भावना की पूर्ति शक्ति, इस जीव-ज्योति अथवा इन्द्रियों के राजा इन्द्रात्मा को, वह सर्वान्तिर्यामी परमेन्द्र परमात्मा प्राप्त होता है अथवा सर्वज्ञता से उसे भली-भांति जानता है।

कवितार्थ

स्वयं प्रकाशक, परमेश्वर प्यारा, प्रति आत्मा में समाया रहता है।
सब जीवों का पालक, पोषक न्यारा, प्रत्यक्षदर्शी निष्पक्ष नित रहता है।
सकल बाहरी सम्बन्ध तजकर सारा, परम अगोचर चित्रगुप्त बना रहता है।
सर्वेश्वर का पा कर परम सहारा, परमेन्द्र का प्रिय सदा रहता है।

विशद विचार - एक ही विषय को एक अद्भुत शैली में अभिव्यक्त करना, वेद-मन्त्रों की विशेषता है। ऐसी कुछ झलक यहां पर दिखाई गई है; जो पूर्व एवं आगामी मन्त्रों से भिन्न है।

आत्मा अपगूढ = अत्यन्त गुप्त है : प्रत्येक प्राणी को उसकी आत्मा प्राणवान् रखती है। यह एक वास्तविक अचम्भा है कि वह उसी में छिपी हुई है। यह शरीर तो दिखाई देता है; किन्तु उसकी निवासिनी-स्वामिनी शरीरी-आत्मा नहीं दिखाई है। बाहर की आंख को बन्द करने एवं अन्दर की खोलने पर, वह किसी सजग को दिखाई पड़ती है।

आत्मा गुहा-हितम् = अन्तर-गुफा में अवस्थित है :- वेद की अंलङ्कारिक भाषा में, वह आत्मा प्रत्येक मानव की अन्तर-गुहा में निरन्तर अवस्थित रहती है। इसे हृदय-गुहा-गुफा कहा गया है। वहाँ पर बैठी हुई यह अदृश्य शक्ति, इस मानव के शरीर को चलाती है एवं उसे निरन्तर क्रियाशील रखती है। अन्तःकरण में आत्म-ज्योति को जगमगाने वाले को वह दिखाई देती है, अपितु वहाँ गहन अन्धकार रहता है; जो कि उसके स्वयंजन्य प्रगाढ़-प्रमोह एवं अज्ञान-अभिमान की परिणति है।

आत्मा चित्रबर्हिः = भक्ति-भावों में विभोर है :- आत्मा में अनन्त शक्ति है; जिससे कृति, श्रुति-स्मृति, भक्ति-प्रीति, साधना-अराधना, भव्यता-नव्यता एवं आत्मिक-आध्यात्मिक क्षेत्रों में प्रगति का निरन्तर वरण होता है। भक्ति के भावों में विभोर, एक भक्त अपने भगवान् की परम कृपा का सुपात्र बनता है वह आत्मस्थ परम सखा परमदेव परमात्मा के आशीष को प्राप्त करके कृतकृत्य होता है।

आत्मा इन्द्र-राजा है :- आत्मा अपने शरीर की समस्त इन्द्रियों का इन्द्र अथवा राजा है। वह उनसे सर्वोपरि है एवं उनपर शासन करती है। जितेन्द्रिय उन्हें अपने वश में रखता है;

जबकि अजितेन्द्रिय को वे वश में रखती है। प्रमादी का निरन्तर पतन एवं अप्रमादी प्रगति करता है। सतत् प्रबुद्ध-प्रसन्नद्ध साधक ही परमात्मा का शुभाशीष प्राप्त करके मोक्ष का वरण करता है।

इन्द्र द्वारा परमेन्द्र का आत्मगुहा में दर्शन :- समस्त आत्माओं का इन्द्र-राजा-स्वामी होने से परमात्मा-परमेन्द्र तथा मानव की इन्द्रियों का इन्द्र-राजा स्वामी होने से आत्मा को भी इन्द्र कहा गया है। परमात्मा सर्वात्माओं की आत्मा-सर्वान्तर्यामी है। इतना अभिन्न होने पर भी किसी भाग्यशाली को ही उसके दर्शन होते हैं। इस का कारण अति स्पष्ट है कि अधिकांश जन बहिर्मुखी अर्थात् शरीर के अंगों के विषयों में संलिप्त रहने से, विषयातीत परम सत्ता से विमुख रहते हैं। एवं उनकी उससे आत्मीयता होने पर भी अति दूरी बनी रहती है। इन विषयों से निर्लेप रहने वाला ही अन्तर्मुखी हो सकता एवं अन्तर-स्थित परमदेव परमात्मा से आत्मीयता स्थापित कर सकता है।

स्वयं प्रकाश परमेश्वर का ज्ञान-प्रकाश सर्वत्र व्याप्त होने से, प्रत्येक जीव की हृदय-गुफा में भी विद्यमान है। आत्मा पर अज्ञानान्धकार का गहन पर्दा पड़ा हुआ है; जिसे स्वयं के प्रयास से हटाने पर, यह इन्द्र-आत्मा, उस परमेन्द्र-सर्वात्माओं के स्वामी का आत्मगुहा में साक्षात् दर्शन करता है।

जितेन्द्रियः- जितेन्द्रिय बनने के अभिलाषी को रात-दिन प्रणव(ओम्) का जाप करना चाहिए। रात को यदि जाप करते हुए आलस्य बहुत बढ़ जाए तो दो घण्टा भर निद्रा लेकर उठ बैठे और पवित्र प्रणव (ओम्) का जाप करना आरम्भ कर दें। बहुत सोने से स्वप्न अधिक आने लगते हैं, ये जितेन्द्रियजन के लिए अनिष्ट है।

- महर्षि दयानन्द सरस्वती

९ सर्वोत्तम ज्योति का दर्शन

ओ३म् उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम्। देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥ यजु. २० ॥, ॥ २१.३५-१४ ॥

शब्दार्थ

(वयम्) हम (तमसः) सब अविद्या-अन्धकार से (परि) पृथक् (स्वः) आनन्द एवं प्रकाश स्वरूप, (उत्तरम्) प्रलय के पश्चात् भी सदा वर्त्तमान, (देवत्रा) सब दिव्य गुण वाले पदार्थों में भी अनन्त गुणों से युक्त, प्रकाश करने वालों में भी (देवम्) प्रकाश करने वाले तथा धर्मात्माओं और मुक्ति की इच्छा करने वाले तथा योगयुक्तों को पूर्ण आनन्द देने वाले और प्रसन्न करने वाले (सूर्यम्) चराचर जगत् के आत्म, संचालक (उत्तमम्) सर्वोत्कृष्ट (ज्योतिः) ज्ञानस्वरूप और अपने प्रकाश से प्रकाशित आप का (पश्यन्तः) साक्षात् करते हुए (उत्) सत्य एवं उत्कृष्ट श्रद्धा से युक्त (अगन्म) आप को प्राप्त होवें अथवा प्राप्त हुए हैं, हमारी रक्षा करनी आपके हाथ है; क्योंकि हम लोग आपके शरण हैं।

(विशेष - उपर्युक्त शब्दार्थ महर्षि दयान्नद सरस्वती का है)

भावार्थ

अज्ञान, अन्धकार, जड़ता एवं माया से युक्त होने पर भी, प्रकृति में उत्कृष्टता-उत्तमता अथवा सत्-तत्त्व है। प्रकृति की न्यूनताओं से परे, यह आत्मा (उत्-तरम्), उससे उत्कृष्टतर, उत्तरत्तर अथवा सत्-चित् है। परमात्मा स्वप्रकाश, ज्ञानस्वरूप,

प्रकाशकों एवं देवताओं में उत्कृष्टतम-उत्तमतम अथवा सच्चिदानन्द है। प्रभाकर, प्रकाशक, सर्वप्रेरक एवं परमादित्य, उस परमदेव परमेश्वर को हम प्राप्त होवें, उसका साक्षात् अथवा दर्शन करें।

कवितार्थ

सब अज्ञान, अन्धकार को तज कर, स्वयं सत् चित् का अभिज्ञान करें।
सकल सुप्त बोध को उदबुद्ध कर, सच्चिदानन्द का नित ध्यान करें॥
सत्य दिव्य भाव को जागृत कर, सोमेश का सतत गुणगान करें।
स्व आत्म दीप को प्रदीप कर, सर्वज्योतिर्दा का भान करें॥

विशद विचार :- अधिकांश भक्तजन प्रायः प्रार्थना करते रहते हैं "हे भगवान्! अपने शुभ दर्शन देकर हमें कृतार्थ कीजिए"। स्मरण रखिए कि केवल कामना से ईश्वर की प्राप्ति सम्भव नहीं है। उस अमूल्य रत्न को पाने के लिए भक्ति-सागर में स्वयं कूदना, तैरना तथा उसकी अथाह तल में डुबकी लगानी पड़ती है। इसके अतिरिक्त निरन्तर अभ्यास से आत्मा पर पड़ा हुआ अज्ञानान्धकार का आवरण, जब हट जाता है, तभी उस परमज्योति स्वरूप-सच्चिदानन्द का दिव्य-दर्शन होता है।

देवम् देवत्रा उत्तरम् = परमात्मा परमदिव्य देव हैं :- पावन, सात्विक, उत्तम एवं दिव्य गुण सम्पन्न को देव के रूप में विभूषित किया गया है। परस्पर गुण-विशेष की न्यूनाधिकता के कारण, कोई एक अन्य से उत्तर हो सकता है। परमदेव समस्त मानव देवों एवं सूर्य, चन्द्रमा आदि प्राकृतिक देवों में स्वतः सर्वोत्तम-सर्वश्रेष्ठ है। वह

सर्वगुण-सम्पन्न एकमेव परमदेव है तथा सकल देव उससे दिव्यता-भव्यता, शुद्धता-सात्विकता, एवं विभूति-ज्योति प्राप्त करते हैं।

स्वः =परमात्मा सच्चिदानन्द स्वरूप है :- प्रकृति सत्, अचेतनता-जड़ता एवं अज्ञान-अन्धकार से युक्त होने पर भी एक उत्तर-उत्कृष्ट नित्य तत्त्व है। आत्मा सत्-चित् होने से, प्रकृति की तुलना में उत्तरत्तर-उत्कृष्टतर शाश्वत सत्ता है। परमात्मा सत्-चित्-आनन्द = सच्चिदानंद स्वरूप होने से, सर्वात्माओं में उत्तमतम-उत्कृष्टतम है। उसकी किसी अन्य से तुलना नहीं की जा सकती है। वह स्वतः स्वयं में परिपूर्ण-सम्पूर्ण एकल सत्ता है। वह दुःखहारी-सुखकारी, सुख-शान्ति, मुक्ति-स्वस्ति एवं आत्मानन्द का परम प्रदाता है।

तमसः परि सूर्यम् = परमादित्य परमेश्वर अज्ञानान्धकार से विरहित है :- आकाश में प्रकाशित होने वाले सूर्य आदि प्रकाशमान ग्रहों को प्रकाशित-प्रभासित करने वाला प्रखर सूर्य देव प्रभुवर स्वयंप्रकाश एवं ज्ञानरूप होने से, वह अज्ञान-अन्धकार से पूर्णरूपेण विरहित है। उससे प्राप्त प्रकाश से अन्तराकाश का अन्धकार एवं वेदज्ञान से तम-भ्रम का नाश होता है। अन्धकार मृत्यु एवं प्रकाश जीवन है।

पश्यन्तः ज्योतिः उत्तमम् = सर्वोत्तम ज्योति का दर्शन करें :-प्राकृतिक एवं मानव-कृत जितनी भी ज्योतियां हैं, उन सबका एकमेव स्रोत परमसूर्य परमात्मा की अखण्ड ज्योति है; जो कि सतत् ज्योतित रहती एवं कदापि नहीं बुझती है। समग्र प्रभा मण्डलों एवं मानव-हृदयों में वही

जगमगाती है। बाहर के प्रकाशित पिण्डों-उपकरणों की ज्योति को हम अपने बाहर के चर्म-चक्षुओं से निरन्तर देखते हैं; किन्तु उन सबको तथा अदृश्य आत्म-यन्त्र को प्रकाशित प्रचालित करने वाली एवं उसमें अभिन्न रूप से व्याप्त परमदेव की दिव्यता-भव्यता एवं ज्योति-शक्ति की झलक केवल मात्र अन्तः चक्षु से देखी जा सकती है। मानव द्वारा निर्मित संयंत्रों से निकलने वाली ज्योति को झुंझावात सरलता पूर्वक बुझा देते हैं; किन्तु एक बार आन्तरिक ज्योति के जगमगाने पर उसे बुझाने में वे सर्वदा असफल रहते हैं। आत्मज्योति से सर्वोत्तम-परमज्योति का साक्षात् अथवा दर्शन हो जाने पर, इधर-उधर भटकने एवं ठोकरें खाने की समस्त संभावना समाप्त हो जाती है।

उत्-वयम् अगन्म =हम उत्तमतायें प्राप्त करें = हे ओंकार! सच्चिदानन्द परमपिता परमेश्वर! आप परम कृपालु हैं, हम आप की शरण हैं। आप हमारे पालक-पोषक, प्रेरक-प्रचेतक, दुःखनाशक-सुखदायक, ज्ञान-प्रकाश, सुख-शान्ति, स्वास्ति-मुक्ति, ज्योति-दीप्ति एवं आत्मानन्द के प्रदाता हैं। हम जीवात्मायें आपके मानस पुत्र-पुत्रियां हैं। अपनी अनन्त विभूतियों-ज्योतियों का अंशदान करके, आप हमारा उद्धार-उत्थान कीजिए। आप हमें शुभाशीष दीजिए कि हम आप की सर्वोत्तम ज्योति का दर्शन कर सकें।

परमात्मा एकमेव परम एवं आत्मा एक लघुतम विद्युत केन्द्र है :- पंचतत्त्वों से निर्मित यह सुन्दर मानव शरीर, एक भव्य भवन से भी अधिक भव्यतर है। कभी दीपक, लालटेन

एवं मोमबत्ती से घरों को प्रकाशित किया जाता था। विज्ञान की प्रगति के कारण विद्युत के विविध आकार के लट्टुओं से उसे सजाया-जगमगाया एवं अन्धकार को दूर किया जाता है। विद्युत-केन्द्र से बिजली के स्तम्भों के माध्यम से असंख्य नगरों, उद्योगों एवं घरों को कृत्रिम प्रकाश प्राप्त होता है। जब कभी किसी कारणवश विद्युत-केन्द्र के संयंत्रों में बिगाड़ आ जाता है, तो सर्वत्र अन्धकार छा जाता है। इसी प्रकार शरीर रूपी भवनों में नेत्रों की ज्योति, जठराग्नि की पाचन क्रिया, मस्तिष्क की चेतनता, बुद्धि की प्रगल्भता एवं शरीर के अंगों की गतिशीलता, इस आत्मारूपी विद्युत केन्द्र से प्राप्त होती है। आत्मा के शरीर से निकलते ही समस्त अंग-प्रत्यंग निस्तब्ध, निस्तेज एवं निर्जीव हो जाते हैं एवं यह भव्य शरीर-भवन शव बन जाता है।

समस्त ब्रह्माण्ड में सूर्य, चन्द्र, तारागण, मेघ, दिशाएं, वायु-प्रवाह एवं पृथ्वी की गतिशीलता के अग्नितत्त्व आदि का मूल प्राप्ति-स्थान, परमात्मा की अखण्ड अदिति-शक्ति, द्युति-ज्योति एवं प्रभा-प्रकाश पुंज है। उसकेसाथ सम्पर्क की स्थिति में ही उनका अस्तित्व है एवं विपरीतावस्था में वे अस्तित्वहीन हो जाते हैं। वेदों एवं वेद-सम्मत सदशास्त्रों में अनेकशः वर्णन आया है कि आत्मज्योति केन्द्र परमात्मा से सम्पर्क जुड़ने तथा अज्ञानान्धकार के दूर होने पर आत्मदर्शन एवं परमात्म दर्शन सम्भव है अन्यथा कदापि नहीं है।

योग-साधको! आईए इस परमसत्य की अनुभूति एवं मानव जीवन को सार्थक करने के लिए कटिबद्ध होवें।

परमसूर्यः

सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा ॥ *॥ यजु. ३.९ ॥*

सकल चराचर जगत् का आत्मा परमेश्वर, जो कि आत्माओं को ज्योतित-प्रकाशित एवं ज्ञान्-विज्ञान से पूरित करता है, उसका हम श्रद्धापूर्वक-शुभभाव से स्वान्तः में आह्वान-यजन-पूजन करें।

ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा ॥ *॥ यजु. ३.९ ॥*

स्वयं प्रकाश-ज्ञानस्वरूप परमदेव परमात्मा, जो कि सूर्य आदि समस्त प्रभालोकों का प्रकाशक एवं जीवात्माओं का मार्गदर्शक-उद्धारक है, हम उस परमज्योति स्वरूप-प्रखरसूर्य का योगसाधना द्वारा साक्षात्-दर्शन करें।

१० परम सत्य का दर्शन

ओ३म् हिरण्यमयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्। यो असावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम् ओ३म् खं ब्रह्म ॥ *॥ यजु. ४०.१७ ॥*

शब्दार्थ

परमेश्वर ने इस मन्त्र के माध्यम से सुस्पष्ट किया है कि एक (सत्यस्य) परम सत्य, अमर सत्त्व-तत्त्व एवं योग-क्षेम के (मुखम्) मुख अथवा मुक्ति के द्वार को (हिरण्यमयेन) स्वर्णादि, साधन-सम्पदा अथवा भौतिक सुखोपभोग रूपी (पात्रेण) बर्तन के ढक्कन अथवा मोह-माया के आवरण ने (अपिहितम्) ढका हुआ है। उस (आदित्ये) परम प्रतापी, प्रचण्ड सूर्य, प्रकाश पुंज एवं ज्योति स्वरूप देव में, (यः असौ) जो यह (पुरुषः) जीव, शक्ति संचेतना है, (सः असौ अहम्) वह मैं 'परमेश्वर हूँ। मुझ (ओम् खं ब्रह्म) परमब्रह्म, विश्वपति का सर्वोत्तम निज नाम ओ३म् है; जो कि आकाशवत् अति विशाल, विस्तृत एवं अनन्त-असीम है।

भावार्थ

यह सृष्टि मन-मोहिनी है। महेश्वर, इसका सृष्टा है। हम संसारी, इस मोहिनी के पीछे भागते हैं तथा वह हमारे आगे भागती एवं पकड़ में नहीं आती है। हम भागते हुए थक जाते हैं, बेहोश हो कर गिर पड़ते एवं दम तोड़ देते हैं। महेश के भक्तों को उसे प्राप्त करने एवं उसका दिव्य-दर्शन अथवा साक्षात्कार करने के लिए इधर-उधर भागने-भटकने की

आवश्यकता नहीं है; क्योंकि वह सदैव उनके समीपस्थ है।

यह माया एक भ्रमजाल है एवं महेश एक सत्य है। माया के पर्दे को हटाने से, उस महेश (सत्य) के दर्शन होते हैं। यह परम सत्य-सृष्टि के कण-कण, मानव के रोम-रोम एवं प्रत्येक जीव की आत्मा में अन्तर्यामी के रूप में संव्याप्त है। इस सृष्टि-सुन्दरी ने अपने स्वर्णपात्र अथवा मोह-माया के आवरण में, उस सत्य को छिपाया हुआ है। इस आवरण के हटते ही एक परमसत्य प्रकट होता है; जिसे परमब्रह्म अथवा परमेश्वर कहते हैं। उसका सर्वोत्तम निज नाम ओ३म् है; जो कि आकाशवत् अति विशाल, विस्तृत, व्यापक तथा अनन्त-असीम है।

कवितार्थ

मोह, माया से पूर्ण जगत् को, मोक्ष-धाम सम कभी मत मानो।
ममता तज कर स्वर्ण-कोष को, महत् वेद को ज्ञान-धन मानो ॥१॥
सृष्टि-गर्भ में छिपे सत्य को, पूर्ण दिव्य दृष्टि से पहचानो।
सुदूर भगा कर घोर तिमिर को, परम प्रकाश को नर पहचानो ॥२॥
प्रखर सूर्य के आज, तेज को, पूर्ण सृष्टि की ज्योति जानो।
पूर्ण ब्रह्म मुझ ओंकार को, प्रतिष्ठ अन्तःकरण में जानो ॥३॥
सर्वव्यापी मुझ परम शक्ति को, स्वयं सृष्टि में सब पहचानो।
समस्त लोक के संचालक को, समग्र दृष्टि से सम पहचानो॥४॥

विशद विचार :- सर्वान्तर्यामी एवं सर्वाहितैषी परमात्मा ने, अपनी समस्त जीवात्माओं के कल्याणार्थ, इस वेद-मन्त्र के माध्यम से, एक परमसत्य को स्थापित किया है; जिसे

चरितार्थ करके वे अपने दुर्लभ मानव-जीवन को सफल-सार्थक कर सकते हैं।

सृष्टि सुन्दरी-मोहिनी है :-दार्शनिकों-देवजनों, उपदेशकों-विद्वानों एवं लेखकों-कवियों ने, एक अलंकारिक शैली में सृष्टि का सुन्दरी एवं मोहिनी के रूप में वर्णन किया है। इसे आकर्षक तन्वी एवं नवोढा-दुल्हन भी कहा गया है। जैसे एक नव-नवेली एक सुन्दर-सजीली नारी, प्रत्येक मनुष्य को अपनी ओर आकर्षित करती है, उसी भान्ति यह सृष्टि भी करती है। उसे प्राप्त करने के लिए मनुष्य उसकी ओर बढ़ता है; किन्तु वह चपला-चंचला आगे दौड़ती है एवं मनुष्य उसके पीछे दौड़ता-भागता हुआ निढाल हो करके, अपना जीवनान्त कर लेता है। उसके पीछे नहीं दौड़ने वाले योगी-यति के यह चरण-स्पर्श करना चाहती है; किन्तु वह उससे नितान्त विमुख रहता है।

मोहिनी से विमुखता एवं महेश से सम्मुखताः- इस मोहिनी से जो व्यक्ति जितनी विमुखता अथवा दूरी बनाता है, वह उतनी ही महेश से सम्मुखता-निकटता स्थापित करता है। उसके अस्थायी आकर्षणों से बच कर वह ईश्वर की स्थायी प्रीति की ओर आकर्षित होता है। इस प्रकार वह पतनोन्मुखी न हो कर, आत्मोन्मुखी होता है; जो उसे शान्ति-स्वस्ति की प्राप्ति कराती है।

संसार एक स्वर्णपात्र है :-इस संसर को एक स्वर्णपात्र की उपमा प्रदान की गई है। स्वर्ण एक बहुमूल्य धातु है; जिससे अनेक आकार-प्रकार के आकर्षक आभूषण बनते हैं;

एवं उनसे मानव के तन की शोभा बढ़ती है। समय के साथ इनकी चम-दमक फीकी पड़ जाती है। मनुष्य के सद्गुण-सच्चरित्र स्वरूप आभूषणों की शोभा स्थायी रहती है। अन्य लोग उससे आकर्षित-प्रभावित हो करके, उसका सम्मान करते हैं। वह अपनी प्रीति-भक्ति से प्रभुवर को भी प्यारा लगता है एवं उसके शुभाशीष का सुपात्र बनता है।

स्वर्णपात्र का मुख ढका हुआ है :- संसाररूपी इस स्वर्णपात्र के मुख को मोह-माया ने ढका हुआ है अथवा अज्ञान-अन्धकार के आवरण से वह आच्छादित है। पूर्व की पंक्तियों में एक सूक्ष्म सा संकेत किया जा चुका है; अतः अधिक विस्तार में जाते हुए इतना ही कहना उपयुक्त है कि इन परदों-आवरणों को हटाने पर, उसमें छिपी हुई एक अनमोल वस्तु की प्राप्ति होती है। आईए! हम भी देखें कि उसके अन्दर क्या है?

स्वर्णपात्र में सत्य छिपा हुआ है :- इस सुन्दर एवं आकर्षक सृष्टि की सुन्दरता तथा आकर्षण उसका अपना नहीं है;अपितु किसी अन्य की देन है। उसकी भव्यता-नव्यता एवं सत्ता-महत्ता, एक अज्ञात परम सत्ता की देन है; जो कि एक नित्य तत्त्व-सत्त्व है। सृष्टि की गति-शक्ति, संचेतना-सजीवता एवं जीव-जीवन में ईश्वर द्वारा प्रदत्त संजीवनी विद्यमान है। यह एक सत्य है जो कि बाहर दिखाई नहीं देता है; किन्तु स्वर्णपात्र स्वरूपा इस सृष्टि एवं प्राणिमात्र की आत्मा में वह छिपा हुआ है।

परम सत्य का दर्शन :- इस मंत्र के माध्यम से परमेश्वर ने स्वयं स्पष्ट किया है, 'ओम् खं ब्रह्म' - समस्त ब्रह्माण्ड के कण-कण एवं जीव मात्र के रोम-रोम में विद्यमान परम सत्ता मैं ही हूँ। मेरा निज एवं सर्वोत्तम नाम ओम् है। मैं आकाशवत् सर्वत्र-सर्वदा-सर्वथा संव्याप्त, एक शाश्वत तत्त्व-सत्त्व हूँ। सदैव स्मरण रखें कि अनादि ज्ञान-स्रोत वेद की आज्ञाओं का पालन, धर्माचरण, सत्य का पालन एवं योग साधना का निरन्तर अनुष्ठान करने से, उस परम सत्व का साक्षात् सृष्टि एवं स्वान्तः में दर्शन करने से, भव-बन्धन से सम्मुक्ति प्राप्त होती है।

मुक्ति

'मुक्ति' अर्थात् सब दुःखों से छूट कर बन्धन रहित सर्वव्यापक ईश्वर और उसकी सृष्टि से स्वेच्छा से विचरना, नियत समय पर्यन्त मुक्ति के आनन्द भोग कर पुनः संसार में आना।

'मुक्ति के साधन' ईश्वरोपासना अर्थात् योगाभ्यास, धर्मानुष्ठान, ब्रह्मचर्य से विद्या प्राप्ति, आप्त विद्वानों का संग, सत्यनिष्ठा, सुविचार और पुरुषार्थ आदि है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती

स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाशः

११ आनन्दस्वरूप परमात्मा का दर्शन

ओ३म् अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या। तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः ॥ ऋ. १०.२.३१ ॥

शब्दार्थ

योग के (अष्टचक्रा) आठ चक्रों एवं (नवद्वारा) नौ द्वारों वाली, (देवानाम्) देवजनों की (पूः अयोध्या), अपराजेय पुरी, (तस्याम्) उस मानव तन स्वरूपा नगरी में (हिरण्ययः कोशः) सुवर्ण कोश, ज्ञान-बल से युक्त जीवात्मा अवस्थित है। वह (स्वर्गः) स्वर्ग, मोक्ष एवं आनन्द स्वरूप परमात्मा तक ले जाने, प्राप्त कराने वाला है; जो कि (ज्योतिषा) उस परमदेव की ज्योति-दीप्ति से (आवृतः) सर्वतः आच्छादित है।

भावार्थ

योग के आठ चक्रों-क्रमों अर्थात् यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, समाधि तथा नौ द्वारों अर्थात् दो आंख, दो कान, नसिका छिद्र दो, मुख एक, मलेन्द्रि एवं मूत्रेन्द्रिय से युक्त मानव तन स्वरूपा पूर्ण अजेय-अयोध्या नगरी में सुवर्ण कोश अर्थात् ज्ञान-विज्ञान, ओज-तेज एवं प्रकाश-प्रभा से युक्त जीवात्मा रहता है; जो ज्ञान-क्रिया द्वारा मानव को परमात्मा तक ले जाता, उसकी प्राप्ति एवं दर्शन कराता है। उस स्वयंप्रकाश - ज्योतिस्वरूप परमदेव परमात्मा ने इस आत्मा को अपने प्रकाश-पुंज से

सर्वतः-सर्वथा आच्छादित किया हुआ है; तथा दोनों एक स्थान पर मानव की अन्तर्गुहा-मनमन्दिर में अभिन्न रहते हैं।

कवितार्थ

अष्टचक्रों, नवद्वारों वाली, अयोध्या देव नगरी मानी है।
अक्षय, पूर्ण सुवर्ण कोश वाली, आत्मा अगोचर, गुणखानी है।
अनन्त स्वर्ग सुख धरने वाली, अजर, अमर शक्ति देवयानी है।
अदिति, ज्योति, स्मृति, श्रुति वाली, आदित्य दर्शी, दिव्य ज्ञानी है।

विशद विचार :- इस मंत्र में कुछ ऐसे शब्दों का प्रयोग हुआ है जो वैदिक शैली की भव्यता-नव्यता एवं श्रेष्ठता को प्रतिपादित करने के साथ गहन् मन्तव्य का अनुशीलन भी उपस्थित करते हैं। आगामी पंक्तियों में उन्हें उद्घृत करके, अपने विचारों का ताना-बाना बुना जा रहा है।

अष्टांचक्रा :- अष्टांगयोग अर्थात् योग के आठ अंगों-चक्रों-क्रमों का, इस मानव देह से अभिन्न संबंध है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, समाधि ये आठ चक्र हैं। इनके सूक्ष्म भाव का क्रमशः उल्लेख किया जा रहा है।

यम - अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, ये पांच यम हैं।

नियम- शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर-प्रणिधान- ये पांच नियम हैं।

आसनः- सुखासन, पद्मासन, सिद्धासन, स्वस्तिकासन, वज्रासन - ये प्रमुख आसन हैं।

प्राणायाम :- प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान - ये प्रमुख प्राण हैं।

बहिरंग योग की उपादेयता :- उपर्युक्त चारों को बहिरंग योग कहा गया है जो हमारे स्थूल शरीर अथवा अन्नमय कोश को स्वस्थ रखते हैं। इनसे सूक्ष्म शरीर का प्राणमय कोश शुद्ध होता तथा योग-साधना की क्षमता बढ़ती है।

प्रत्याहार :- इन्द्रियों को बाहरी विषयों से हटा कर अन्तर्मुख होना एवं आत्म-चिन्तन करना प्रत्याहार है।

धारणा :- अभ्यास द्वारा मन का किसी विषय पर स्थिर होना 'धारणा' है।

ध्यान :- धारणा की परिपक्वास्था में एकमेव भाव बिन्दु पर एकरस-रूप होना ध्यान है।

समाधि :- ध्याता द्वारा ध्यान की अवस्था में अपने स्वरूप को भूल कर केवल मात्र ध्येय का शेष रहना, उसमें विलीन होना अथवा आत्मा की परमात्मा में समाहिति 'समाधि' है।

अन्तरंग योग की उपयोगिता :- क्रमांक पांच से आठ तक के योगों को अंतरंग योग कहा गया है। इनसे सूक्ष्म शरीर के मनोमय तथा विज्ञानमय कोष की परिशुद्धि-पुष्टि होती है। मानस मन्दिर, देवदेह, दिव्यपुरी अथवा अन्तर्गुहा में अवस्थित आत्मा-परमात्मा की अन्तरंग अवस्था में, आत्मा द्वारा परमात्मा से साक्षात् करना, एक आध्यात्मिक उपलब्धि-उपयोगिता है।

शरीर के अष्टचक्र :- हठयोग में इन चक्रों को विशेष महत्व दिया गया है; किन्तु वैदिक योग पद्धति, योग साधना इसका अनुमोदन नहीं करती है। यहां पर विषयानुरूप उसका केवल उल्लेख किया जा रहा है। (1) मूलाधार (2) स्वाधिष्ठान (3) मणिपूरक-नाभि (4) अनाहत-हृदय (5) सूर्य (6) विशुद्ध-कण्ठ (7) अज्ञा-भूमध्य भृकुटि (8) सहस्रार -ब्रह्मरन्ध्र।

विशेष कथन :- योग साधना अथवा अध्यात्मोत्थान काल में, इन के विधिवत शोधन के अभाव के कारण, यदाकदा प्राण इन चक्रों में रुक जाता है। आत्मा द्वारा ब्रह्मरन्ध्र से निष्कासन को सर्वोत्तम गति-स्थिति मानी गई है।

नवद्वारा :- मानव के शरीर में आंख के दो गोलक, नसिका के दो छिद्र, दो कान, एक मुख, एक मलेन्द्रिय एवं एक मूत्रेन्द्रिय, ये नव(नौ) द्वार (दरवाजे) माने गये हैं। आयु की समाप्ति पर शरीर को त्यागते समय, आत्मा इनमें से किसी एक द्वार से निष्कासित होता है तथा तदनुरूप उसको आगामी जीवन (जन्म) प्राप्त होता है।

देवानां पूरयोध्या :- देवानाम् पूः अयोध्या अर्थात् देवजनों की अपराजेय पुरी-नगरी, मानव-देह एवं देव-दिव्य तथा पुनीत-विधितकर्म, ज्ञान एवं उपासना के लिए दिया है। इस देह में एक अव्यक्त देही, शरीर में शरीरी-आत्मा, उसकी स्वामिनी, निवासिनी एवं संचालिका-संजीविनी के रूप में अवस्थित है। देव-दिव्याचरण करने वाले देव एवं दुरित-अदिव्य-निकृष्टाचरण करने वाले दानव कहलाते हैं। इन दोनों कोटि के विचारों एवं विचारकों में द्वन्द्व चलता

रहता है। किन्तु अन्त में देवों की जय तथा दैत्यों की पराजय होती है। इसी वास्तविकता के कारण, इसे शास्त्रों में देवों की अयोध्या अथवा अपराजेय देव पुरी से विभूषित किया गया है। यहाँ पर यह स्पष्ट करना भी उचित प्रतीत होता है कि रामायण महाकाव्य में वर्णित मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र जी की राजधानी अयोध्या नगरी से इसका लेशमात्र संबंध नहीं है। स्मरण रखिए कि वेद एक अपौरुषेय सत्य-सनातन वैदिक ग्रन्थ है; जिसमें इतिहास का कदापि समावेश नहीं है।

हिरण्ययकोशः- मानस-मन्दिर अथवा मानव हृदय-स्थली को हिरण्यकोष अर्थात् स्वर्णिम आभा से युक्त स्वर्ग-सुख की अनुभूति एवं प्राप्ति का स्थान-विशेष कहा गया है। इसकी विस्तृत जानकारी, इससे आगामी मंत्र में दी गई है।

स्वर्गः ज्योतिषा आवृतः- परमात्मा एवं आत्मा दोनों मानस-मन्दिर अथवा मानव हृदय-गुहा में निवास करते हैं। परमादित्य परमदेव परमात्मा स्वयंप्रकाश, ज्ञानस्वरूप, प्रभापुंज एवं अनादि ज्योति-दीप्ति प्रदाता है। उसी ने आत्मा को अपने प्रभा-प्रकाश एवं ज्ञान-विज्ञान से सर्वतः आच्छादित किया हुआ है। उस सच्चिदानंद स्वरूप की कृपा से ही मनुष्य को मोक्ष-स्वर्ग की प्राप्ति होती है। प्रायः यह भ्रम बना हुआ है कि स्वर्ग-नरक इस भूलोक अथवा मानव के शरीर के अतिरिक्त अन्यत्र विद्यमान है। वास्तविकता यह है कि इसी शरीर के द्वारा एवं इसी जीवन में भोगे जाने वाली सुखावस्था 'स्वर्ग' एवं दुःखावस्था 'नरक' है।

स्वर्ग और नरक :- यही सुखविशेष 'स्वर्ग' और विषय-तृष्णा में फंस कर दुःखविशेष का भोग करना 'नरक' कहलाता है। 'स्वः' सुख 'स्वर्ग' और उसके विपरीत दुःख का नाम 'नरक' है। जो सांसारिक सुख है, वह 'सामान्य स्वर्ग' और जो परमेश्वर की प्राप्ति से आनन्द है, वह 'विशेष स्वर्ग' कहलाता है। **महर्षि दयानन्द सरस्वती**

सत्यार्थ प्रकाश नवम समुल्लास

सुख, शान्ति एवं आनन्द किस में तथा कहां मिलता है?

मनुष्य मात्र की यह स्वाभाविक प्रवृति है कि वह, इन तीनों की प्राप्ति के लिए अपनी क्षमता एवं मान्यताओं के अनुरूप आजीवन प्रयत्नशील रहता है; किन्तु फिर भी वह पूर्णरूपेण सन्तुष्ट-तृप्त नहीं होता है तथा एक दिन समस्त संचित संसाधनों-परिजनों की उपस्थिति में खाली हाथ, इस संसार से विदा हो जाता है। आगामी पंक्तियों में, इनका विस्तृत विवेचन प्रस्तुत है।

भौतिक संसाधनों में सुख नहीं है:- अनादि काल से मनुष्य भौतिक संसाधनों के अधिकाधिक संचय में दिन-रात अपने सामर्थ्यानुसार प्रयास करता आ रहा है। इस पागलपन में कुछ व्यक्ति उचित-न्याय-धर्म एवं तत्य को तिलांजलि देते हुए अनुचित, अन्याय-अधर्म तथा असत्याचरण का अवलम्बन लेने में लेशमात्र भी संकोच नहीं करते हैं। संघर्ष, मारकाट, रक्तपात एवं युद्ध की विभीषिकायें इसी की परिणति हैं। किन्तु इस मानवरूपी भेड़िए की भूख एवं प्यास नहीं बुझती है। संसाधनों के संग्रह की अन्धी दौड़ में उसे सुख-चैन की

सांस लेने का अवसर नहीं मिलता है। ऐसे में उसे सुख-शान्ति कैसे मिल सकती है, जबकि आनन्द की कल्पना भी वह नहीं कर सकता है; क्योंकि यह आत्मिक-अभौतिक अनुभूति है। उसकी लालसा को विराम तभी लगता है जब उसके प्राण पखेरू उड़ जाते हैं।

वास्तविकता का परिचयः- भौतिकता एवं विलासिता का चोली-दामन का घनिष्ट संबंध है। संग्रह एवं उसकी रक्षा की चिंता; उस चिता के समान है; जिसमें सुख-चैन, विवेक-विश्राम, एवं शान्ति-स्वस्ति रूपी ईंधन, भस्म हो जाती है। सम्पन्न व्यक्ति, परिवार एवं देशों की यह वास्तविक आप-बीती है। इस देवभूमि भारतवर्ष के पतन, उसकी पराधीना एवं अनन्त पीड़ा का यही कारण था एवं आज भी उसका अभिशाप वह झेले जा रहा है। भौतिकवादी एवं आर्थिक रूप से सम्पन्न देशों की आपबीती की यह वास्तविकता, समय-समय पर उजागर होती तथा कालचक्र के साथ घूमती रहती है; जिससे सुविज्ञ सुपरिचित हैं।

भौतिकता एवं आध्यात्मिकता का समन्वय :- कर्म-ज्ञान विचार-आचार, भक्ति-भावना, साधना-साध्य अथवा भौतिकता-आध्यात्मिकता को एक साथ जीवन में चरितार्थ करने एवं उनका समुचित समन्वय स्थापित करने से मानव की सर्वांगीण उन्नति सम्भव है। दोनों पक्ष अकेले-अकेले अधूरे, किन्तु संयुक्त रूप से अन्योन्य पूरक हैं।

सुख एवं आनन्द में भेद :- वैदिक त्रैतवाद से अति स्पष्ट है कि प्रकृति-भौतिकता का सुख दे सकती है, वह

आनन्द नहीं दे सकती; क्योंकि उसमें आनन्द का अभाव है। इन्द्रियों का विषय सुख एवं आत्मा का विषय आनन्द है। परमात्मा सच्चिदानन्द स्वरूप है। प्रकृति का संग करने से ही आत्मा को सुखानुभूति होती है। सुख क्षणिक-अस्थायी; किन्तु आनन्द नित्य-स्थायी है। ज्ञानी-ध्यानी एवं योगसाधक-अराधक इन्द्रियवशी न हो कर, आत्मवशी बन कर भौतिक सुख-दुःख की अवस्था से ऊपर उठ कर आनन्द का आश्रय लेते हैं।

आनन्द स्वरूप परमात्मा का दर्शनः- परमात्मा सच्चिदानन्द स्वरूप एवं आत्मा आनन्द से वंचित है। अनेक जन्मों की निरन्तर साधना-उपासना एवं भक्ति-युक्ति के शुभ फल स्वरूप, आत्मा को स्वान्तः में अवस्थित आनन्दकन्द, परम इष्टदेव परमेश्वर का साक्षात्-दर्शन होता तथा जन्म-मृत्यु के कष्ट-क्लेश से छूट कर, वह मोक्ष-स्वर्ग एवं आनन्द की तृप्ति-भुक्ति का चिरकाल तक उपभोग करता है।

आत्मा का मुख्य स्थान तथा आत्म साक्षात्कार :- इसके विषय में महर्षि दयानन्द सरस्वती 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में छान्दोग्योपनिषद् के प्रमाणों से सुस्पष्ट करते हैं - "जिस समय इन सब साधनों से परमेश्वर की उपासना करें उसमें प्रवेश किया चाहे, उस समय इस रीति से करें कि - (अथ यदिदस्मिन) कण्ठ के नीचे, दोनों स्तनों के बीच में और उदर के ऊपर जो हृदय-देश है, जिसको ब्रह्मपुर अर्थात् परमेश्वर का नगर कहते हैं, उसके बीच में जो गर्त है, उसमें कमल के आकार वेश्म अर्थात् अवकाशरूप एक स्थान है और उसके बीच जो शक्तिमान् परमात्मा बाहर-भीतर एकरस होकर भर

रहा है, वह आनन्दस्वरूप परमेश्वर उसी प्रकाशित स्थान के बीच में खोज करने से मिल जाता है। दूसरा इस के मिलने का कोई उत्तम स्थान या मार्ग नहीं है।

स्वामी दिव्यानन्द सरस्वती
द्वारा लिखित 'वेदों में योग विद्या' से उद्धृत

शान्ति का एकमात्र उपाय

अपने को जान लेने के बाद हम समझ सकेंगे कि शरीर "मैं" नहीं, वह तो लक्ष्य की ओर बढ़ने का मेरा एक साधन मात्र है। जब हम शरीर का श्रृंगार करने के स्थान पर अपना "आत्मा का श्रृंगार करेंगे, उसे सजायेंगे और प्रेम करेंगे उससे, जो कभी नष्ट न हो, जो प्रकाश पुंज हो! जीवन में समस्त कार्यों का निष्काम भाव से करते हुए, सारे भोग भोगते हुए भी हमारा ममत्व उसमें न होगा, हम प्रेम करेंगे, शाश्वत, चिरन्तन सत्य-ज्योति, आनन्द पुंज परमात्मा से जो कभी किसी भी अवस्था में हमसे पृथक नहीं हो सकता। हमारा जिससे प्रेम होगा वह हम से कभी पृथक होगा नहीं होगा तो फिर दुःख कैसे, किसे होगा, सोचिए।

हम शरीर रूपी कमरे में 'आत्मा' रूपी मनुष्य को बन्द कर, दिन रात शरीर की साज सज्जा में लगे हैं। आत्मा की भूख प्यास की हमें चिन्ता नहीं। केवल शरीर को सजा-सजा कर हम शान्ति चाहते हैं; किन्तु जिस प्रकार बन्द कमरे में व्यक्ति सारी सुख सामग्री पास होते हुए भी भोजन के अभाव में व्याकुल हो उठता है उसी तरह जब तक हम

केवल शरीर को सजाते रहेंगे, आत्मा का भूख प्यास मिटाने का सामान नहीं जुटायेंगे, तब तक किसी भी मूल्य पर शान्ति स्थापित न कर सकेंगे।

समय की मांग है कि आज हम सत्य की अराधना करना सीखें। उन भ्रांत और संहारक विचारों को, जिन्होंने धरती को नरक बना रखा है, हम ज्ञान अग्नि में धूं-धूं कर जला दें। आज तक हम वह धन कमाते थे जो यहां से विदा होते समय यहीं रह जाता था, अब हम वह धन संग्रह करें जो हमारे साथ जा सके। हमें जीवन भर आनन्द, शान्ति, सुख और सन्तोष की प्राप्ति हो, और जीवन के बाद भी अपना चरम लक्ष्य प्राप्त कर हम चिर आनन्द प्राप्त कर सकें।

महात्मा वेदभिक्षुः की अमर वाणी-

जनज्ञान पत्रिका से साभार उद्धृत

१२ परब्रह्म का दर्शन

ओ३म् तस्मिन् हिरण्यय कोशे त्र्यरे त्रिप्रतिष्ठिते।
तस्मिन् यद् यक्षमात्मन्वत् तद्वै ब्रह्मविदो विदुः ॥

॥ ऋ. १०.२.३२ ॥

शब्दार्थ

(तस्मिन्) उसी (त्र्यरे) सत्त्व, रजस्, तमस् एवं जन्म, स्थान, नाम, इन तीन अरां के सहारे गति करने वाले तथा (त्रिप्रतिष्ठिते) कर्म, उपासना, ज्ञान- इन तीनों में प्रतिष्ठित-प्रस्थापित, (हिरण्यये कोशे) सुवर्ण कोश मय आत्मा में, (यत् यक्षम्) जो पूजनीय (तस्मिन् आत्मवन्तम्) परमतत्त्व-परमात्मा विद्यमान है, (तत् वै) उसी को, (ब्रह्मविदः विदुः) ब्रह्मज्ञानी ब्रह्मवेत्ता जानते-प्राप्त होते एवं साक्षात्-दर्शन करते हैं।

भावार्थ

इस आत्मा में सत्त्व, रजस्, तमस् अर्थात् सत, रज, तम तीनों गुण, कर्म, स्वभाव वाले तत्त्व विद्यमान हैं। इन अरों के सहारे वह जन्म, स्थान, नाम, तीनों में प्रतिष्ठित तथा इनका अनुष्ठान कर्त्ता है। सुवर्ण कोशमय आत्मा में विद्यमान यक्ष, पूज्य, ज्येष्ठ, मुख्य, वृहद् एवं परमतत्त्व-परमब्रह्म परमात्मा को ब्रह्मज्ञानी, ब्रह्मवेत्ता, ब्रह्मनिष्ठ एवं वेदवेत्ता जानते-ध्याते-प्राप्त होते एवं साक्षात्-दर्शन करके जीवन-मुक्त होते हैं।

कवितार्थ

सत्त्व, रजस्, तमस् इन तीनों में, यह आत्मा वेष्टित रहता है।
स्थान, नाम, जन्म के चक्कर में, यह भोक्ता गतिमान रहता है।
साधना, कर्म, ज्ञान समत्रयी में, यह सत्यवान तन्मय रहता है।
सत्यज्ञाता, ब्रह्म, विधाता में, यह समग्र समाधिस्थ रहता है।

विशद विचार :- इस मन्त्र में आत्मा के गुण, कर्म, स्वभाव एवं नित्य-स्वरूप पर विशेष प्रकाश डालते हुए, उस सर्वप्रकाशक एवं परमब्रह्मदेव का साक्षात् अथवा दर्शन के निमित्त, आत्मा को ज्ञान-कर्म-उपासना का मार्ग अपनाने के लिए प्रेरित-प्रोत्साहित किया गया है।

आत्मा के तीन अरे :- आत्मा के तीन अरे-चक्र हैं जो उसकी गतिविधियों को प्रभावित करते हैं। सत्त्व, रजस्,तमस् जिसे साधारण भाषा में सत्, रज, तम कहा जाता है। ये उसके (गुण, कर्म, स्वभाव का अभिन्न अंग है। अपने कर्मानुसार उसे जन्म, स्थान, नाम विशेष प्राप्त होता है। वह कर्म, उपासना, ज्ञान का अनुष्ठान करता है। वह योग, भोग, रोग का उपभोग करता है। वह उच्च, उच्चतर, उच्चत्तम श्रेणी को प्राप्त होता है। वही मानव, दानव, देव के रूप में जीवन-यापन करता है। पर भौतिक, आत्मिक, आध्यात्मिक क्षेत्र में विशेष योगदान करता है। वह भूत, वर्त्तमान एवं भविष्यत्, इन तीनों कालों में भ्रमण, भक्ति एवं भोग करता है। वही योग साधना के द्वारा मोक्षधाम को प्राप्त करता है।

आत्मा में हिरण्ययकोश है :- सुवर्ण वर्ण के सदृश आभायुक्त एवं ज्ञानतन्तुओं का केन्द्र होने से, उसें हिरण्यय-सुवर्णकोश कहा गया है। वह ज्योति-दीप्ति, प्रभा-प्रकाश से अवेष्ठित, स्वयं के अज्ञान-अन्धकार का

विदीर्ण करने वाला, मोक्ष-स्वर्ग एवं आनन्द की प्राप्ति कराता है। ये दिव्यतायें उसे हिरण्यय कोशे के प्रदाता परमादित्य परमात्मा से सम्प्राप्त हैं।

परमेश्वर परमब्रह्म है:- परम ब्रह्म शब्द का विशेषण केवल मात्र परमेश्वर के लिए उपयुक्त है। वह परमज्ञान-विज्ञान, वेद-विधान, प्रभा-प्रकाश, आदित्य-आभा, गति-मति, मुक्ति-युक्ति, स्वर्ग-सुख एवं आत्मा-आनन्द का एकमेव प्रदाता है। दह यक्ष, पूज्य, ज्येष्ठ, मुख्य, महत्, परमतत्त्व, सर्वव्याप्त ब्रह्माण्ड का कर्त्ता-धर्त्ता एवं संहर्त्ता है।

ब्रह्मवेत्ता द्वारा उस का साक्षात्-दर्शन :- ब्रह्मवेत्ता, वेदज्ञाता एवं योगसाधक, ज्ञान-कर्म-उपासना के माध्यम से, उस परमब्रह्मदेव का अपनी आत्मा में साक्षात् करते एवं दर्शन से कृतार्थ होते हैं। आईए! हम भी उनका अनुकरण करते हुए, अपनी चिर प्रतीक्षित दर्शनाभिलाशा की पूर्ति करें।

ऋषि-वचन

जैसे सांसारिक सुख शरीर के आधार पर भोगता है वैसे परमेश्वर के आधार से मुक्ति के आनन्द को जीव भोगता है। वह मुक्त जीव अनन्त ब्रह्म में स्वच्छन्द घूमता है। ब्रह्म सर्वत्र परिपूर्ण है उसी में मुक्त जीव अव्याहतगति (अर्थात् उसको कहीं रुकावट नहीं) विज्ञान आनन्दपूर्वक स्वच्छन्द विचरता है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती

सत्यार्थ प्रकाश, नवम समुल्लास

१३ आदित्य वर्ण परमपुरुष का दर्शन

ओ३म् वेदाहमेतं पुरुषं महान्तं आदित्यवर्ण तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वाऽति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥

॥ यजु. ३१.१८ ॥

शब्दार्थ

स्वात्मा में परमात्मा का दर्शन करने वाले, एक परमसिद्ध योगी ने स्वात्मानुभूति एवं आनन्दातिरेक को प्रकट करते हुए कहा है, (अहम्) मैं (एतम्) इस (महान्तम्) सर्व महान्, शक्तिमान् तेजवन्त, (पुरुषम्) परिपूर्ण पुरुष-परमेश्वर (आदित्य वर्णम्) प्रभापुंज, प्रचण्ड सूर्य, भास्कर देव, परमादित्य, (तमसः परस्तात्) जो अज्ञान-अन्धकार से सर्वदा-सर्वथा परे अथवा दूर है; उसे (वेद) जानता-मानता एवं देखता-पहचानता हूँ। (तम् एव) उस प्रभाकर देव के, इस परम पावन, ज्योति स्वरूप को भलीभांति (विदित्वा) जान-पहचान कर ही मनुष्य (मृत्युम्) मरण को (अति एति) लांघ, अतिक्रमण, विजय प्राप्त, भव बन्धन से छूट कर (अयनाय) मोक्षधाम, मुक्ति, अभीष्ठस्थान, सद्गति अथवा परमपद को प्राप्त कर सकता है; क्योंकि (अन्यः) इस के अतिरिक्त कोई भी (पन्थाः) शास्त्र-समत मार्ग (न विद्यते) नहीं दिखाई देता है। अर्थात् यही एकमेव स्वस्ति-सम्मुक्ति का परमसिद्ध मार्ग है।

भावार्थ

परमेश्वर-परमपुरुष को आदित्यवर्ण अर्थात् प्रखर-प्रभापुंज कहा गया है एवं वह अज्ञानान्धकार से सर्वदा-सर्वथा दूर है। स्वयं प्रकाश स्वरूप के निकट अन्धेरा नहीं रह सकता है एवं स्वतः ज्ञानवान् में अज्ञान कदापि नहीं ठहर सकता है। वह

सर्व-प्रकाशक एवं वेदाधिष्ठाता है। ऐसे परिपूर्ण प्रकाश-ज्ञान के प्रदाता के साधक की अन्तरात्मा-मन के घोर अन्ध-तम का विदीर्ण हो करके ज्ञान-प्रकाश का प्रवेश होता है। अज्ञानी सदैव असमंजस-अस्थिरता एवं भय-भ्रम से ग्रस्त रहता है। जबकि ज्ञानी स्पष्टता-स्थिरता एवं भव्यता-दिव्यता का वरण करता है। साधना के सुपथ का अविचल साधक -अराधक एवं मनस्वी-तपस्वी बन कर, वह अन्ततः मोक्ष-प्राप्ति की संसिद्धि से जन्म-मृत्यु के भय से भी सम्मुक्त हो जाता है।

कवितार्थ

पूर्ण पुरुष प्रभु शक्तिमन्त का, अखण्ड मनन मन में करता हूँ।
प्रखरादित्य की दिव्याभा का, आलोक आत्म में भरता हूँ ॥१॥
प्रज्वल कर दीप मन मन्दिर का, अन्धकार, अधर्मषण करता हूँ।
प्रशस्त योग, याग, साधना का, अनुष्ठान निरन्तर धरता हूँ ॥२॥
परमात्मा से स्वात्मा का, अर्न्तगुहा में योग करता हूँ।
पूर्णानन्द के सोम सुधा का, अन्तः में आनन्द-चखता हूँ ॥३॥
प्रज्ञान समझकर अमर तत्त्व का, आलिंगन काल का करता हूँ।
प्रत्यक्ष दर्शन कर दर्शनीय का, अभीष्ट मुक्ति सिद्धि करता हूँ ॥४॥

विशद विचार :- वेद-प्रतिपादित सत्य-सिद्धांत का सुचिन्तन एवं तद्नुरुप आचरण-आरोहन करने वाले साधको! आप को स्वाध्याय एवं स्वविश्लेषण करने के लिए आमंत्रित किया जा रहा है तथा अपेक्षा है कि इससे अवश्यमेव आपकी मनोकामना की अति शीघ्र संसिद्धि निश्चित है।

परमेश्वर परिपूर्ण पुरुष है :- परमेश्वर स्वयं एकमेव परिपूर्ण पुरुष है एवं उसकी सृष्टि की संरचना तथा व्यवस्था में भी सर्वत्र पूर्णता का होना स्वाभाविक है। मनुष्य अपूर्ण है, अतः उसके निर्माण में अपूर्णता अथवा त्रुटि की सदैव संभावना

है। सूर्य एवं चन्द्रमा अपने मार्ग से कदापि नहीं भटकते एवं ग्रह-उपग्रह अपनी परिधि में रहते हैं। पंच तत्त्वों की स्वाभाविकता में कोई परिवर्तन नहीं होता है। उसके दैवी भण्डार से असंख्य जीव-प्राणी, अनन्त काल से अपने संरक्षण-सम्भरण एवं पालन-पोषण की सामग्री-सुविधायें प्राप्त कर रहे हैं; किन्तु वह सदैव भरपूर रहता है। मानव की स्वार्थ एवं संग्रह की प्रवृत्ति के कारण, अत्यधिक दोहन करने पर भी प्रकृति की अपार कृपा में कोई कमी नहीं आती है। परम कृपालु के कोष से, भौतिक-अभौतिक धन-ज्ञान तथा भक्ति-शक्ति की प्राप्ति एवं वृद्धि के सुअवसर प्राप्त हैं। ज्ञान-विज्ञान, व्यापार-व्यवहार तथा आत्मिक-आध्यात्मिक प्रगति की अपार सीमायें हैं। विस्तार में न जाते हुए, इतना कहना उपयुक्त है कि मानव का परीक्षा-परिणाम इसी से निकलता है कि वह कैसा और कितना, अपने परमप्रिय परमेश्वर के साधनों का संचय एवं सदुपयोग करता है।

महेश्वर महानतम है :- ब्रह्माण्ड का वह महा-ईश्वर (महेश्वर) है। एवं उसकी किसी अन्य से तुलना नहीं हो सकती है। वह विश्व के प्रत्येक कण-कण, अणु-अणु, सर्वदिशाओं, समस्त लोक-लोकान्तरों, आकाश-पाताल, भूमि एवं सागरों को अपनी अदृश्य व्यवस्था के सूत्र में बांधता है। सभी धनी, बली तथा शक्तिशाली उसके सम्मुख नतमस्तक होते हैं। कराल काल गाल में समाने वालों का भी वह महाकाल तथा कालातीत महानतम, स्वयंम्भव, महेश्वर, समस्त जीवों का परमत्राता-विधाता है। हे परमोद्धारक आप हमारे शत-सहस्र नमन को स्वीकार करके, हमें भवसागर से पार कीजिए।

आदित्यवर्ण अदिति-ज्योति है :- प्रभासित-प्रकाशित होने

वाले समस्त दृश्य-अदृश्य ग्रहों-उपग्रहों का एकमात्र ऊर्जा-उत्पादक, प्रवर्त्तक-प्रवर्धक, प्रदाता-विधाता, संचालक-संस्थापक एवं महानियन्ता प्रभवर को आदित्यवर्ण कहा गया है। प्रखर प्रभाकर-भास्कर देव की प्रभा की दमक-चमक, उस दिव्याभा की एक झलक मात्र है। वह ओज, तेज, बल, विद्या, बुद्धि, शक्ति का प्रदाता है। इनकी स्वयं में प्रस्थापना के लिए उससे प्रार्थना की जाती है। उसी की ज्योति मानव की नयनों में चमकती, मन-मन्दिर को प्रदीप्त करती तथा आत्मा में प्रकाशित होती है। योगी के योग, साधक की साधना, भक्त की भक्ति, मन की मनस्विता, चैतन्य की चिति, मुमुक्षी की मुक्ति एवं अराधक की आध्यात्मिका का आधार-आकार, उस आदित्यवर्ण की अदिति ज्योति है; जिसका वरण करने के लिए मानव को प्रेरित किया गया है।

प्रखरादित्य अज्ञान-अन्धकार से विहीन है :- स्वयं सूर्य प्रभुवर का प्रकाश सर्वत्र अन्धकार का नाश एवं वेदभगवान् का ज्ञान, समस्त अज्ञान को विदीर्ण करता है। वेद के ज्ञान से आत्म-ज्ञान की वृद्धि हो कर सकल अज्ञान मिटता एवं प्रकाश-रश्मियों से गहन तम-भ्रम दूर होता है। कहा गया है कि अकेला ज्ञान लंगड़ा तथा कर्म अन्धा होता है, अतः यहाँ पर इन दोनों का समन्वय स्थापित करके ज्ञानमय भक्ति-मार्ग को अपनाने का संकेत किया गया है। आईए! स्वप्रकाश एवं ज्ञानस्वरूप परमब्रह्म के दर्शन के लिए कटिबद्ध होवें।

परमादित्य के दर्शन से मुक्ति :- इस मन्त्र में आद्योपान्त, एकमेव बिन्दु को प्राथमिकता दी गई है कि अज्ञानान्धकार को मिटाने के लिए, आदित्यवर्ण के ज्ञान-प्रकाश से आत्म-सूर्य को प्रकाशित कीजिए। प्रकाश से स्वतः अन्धकार एवं ज्ञान से अज्ञान मिटता है। सौभाग्य वश योग-साधक को; जब ऐसी

सिद्धि की स्थिति प्राप्त होती है, तब उस आदित्यवर्ण के अभिलषित दर्शन होते, जन्म-मृत्यु के बन्धन कटते तथा मुक्ति की प्राप्ति होती है। परमसिद्ध योगी तब आनन्द विभोर हो करके स्वान्तः की अनुभूति को अभिव्यक्त करता है "स्वतः एवं स्वयं परिपूर्ण, सर्वमहान्, सर्वज्ञ सर्वान्तर्यामी, आदित्यवर्ण, प्रभापुंज, अज्ञानान्धकार से सर्वदा-सर्वथा विमुक्त एवं सच्चिदानन्द परमेश्वर के मैंने स्वान्तः में प्रत्यक्ष दिव्य-दर्शन किए हैं, जिससे मुझे मुक्ति की परमानुभूति हुई है।

पुरुष सूक्त

सहस्रशीर्षा पुरुषः ॥ *यजु.* ३१.१ ॥

वह स्वयं पूर्ण परम पुरुष परमेश्वर हजारों शिरों वाला है।

- उदैत्पुरुषः ॥ *यजु.* ३१.४॥ वह सर्वपालक परमात्मा सदैव-सर्वत्र उदय को प्राप्त होता है :-

यज्ञं पुरुषं अयजन्त ॥ *यजु* ३१.९ ॥

उस परमयजनीय-पूजनीय वन्दनीय देव का योग साधक, मानस यज्ञ द्वारा पूजन करते हैं।

देवा अबध्नन् पुरुषं पशुम् ॥ *यजु.* ३१.१५॥

वेदवेत्ता-दिव्यजन उस जानने योग्य परमात्मा को स्वान्तः में बांधते-सुस्थित करते हैं।

सूर्य्यऽआत्मा जगतस्थुषश्च ॥ *यजु.* १२.४६॥

इस यजुर्वेद के वचन से जो जगत् नाम प्राणी, चेतन और जंगम अर्थात् स्थावर जड़ अर्थात् पृथिवी आदि है, उन सबके आत्मा होने और स्वप्रकाश स्वरूप सबके प्रकाश करने से परमेश्वर का नाम 'सूर्य' है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती

सत्यार्थ प्रकाश, प्रथम समुल्लास

१४ संहिताओं में देव-दर्शन

भर्गो देवस्य धीमहि ॥ यजु. ३६.३ ॥

(देवस्य) परमदेव परमात्मा के (भर्गः) प्रखर तेज को श्रद्धया स्वान्तः में (धीमहि) ध्यावें एवं उसका दर्शन करके, इस मानव जीवन को सार्थक बनायें।

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुकमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतम् ॥ यजु. ३६.२४ ॥

(तत्) वह परमेश्वर (चक्षुः) सर्वज्ञ-सर्वद्रष्टा (देवहितम्) भक्तो-सन्तों देवों का सदैव हितकारी एवं (शुक्रम्) परमपावन है। वह (पुरस्तात्) सृष्टि से पूर्व (उच्चरत्) वर्त्तमान था, वर्त्तमान में है एवं भविष्य में भी रहेगा। (पश्येम शरदः शतम्) उसकी अपारानुकम्पा से, हम सौ वर्ष तक निरन्तर चर्मचक्षुओं से सृष्टि का एवं अर्न्तदृष्टि से उसका दिव्य-दर्शन करते हैं।

ज्योतिर्यज्ञेन कल्पताम् ॥ यजु. १८.२६ ॥

(यज्ञेन) हमें योग यज्ञ से (ज्योतिः) ब्रह्म की दिव्य-ज्योति एवं ज्ञान-प्रकाश का (कल्पताम्) सामर्थ्य प्राप्त होवे।

तददरे तद्वन्तिके ॥ यजु. ४०.५ ॥

(तत् दूरे) वह सर्वान्तर्यामी दूर एवं (तत् उ अन्तिके) वही अति निकट भी है। अज्ञानी, अधार्मिक, नास्तिक एवं योग साधना नहीं करने वाले व्यक्ति के लिए दूर-अतिदूर है; किन्तु ज्ञानी, धार्मिक, आस्तिक, आध्यात्मिक, योगी एवं साधक के अति निकट अथवा उसके हृदयस्थ होने से, उसका सहज साक्षात् हो जाता है।

श्रितमन्तः समुद्रे हृदयन्तरायुषि ॥ ऋ ४.५८.११ ॥

मनुष्य को चाहिए कि वह (समुद्रे हृदि अन्तः) सागर के समान विशाल हृदय तथा उसके (आयुषि अन्तः श्रितम्) जीवन-सर्वस्व में संव्याप्त, परमाश्रय परमेश्वर की श्रद्धा पूर्वक उपासना करे।

गुहा निषीदन्... विदन्तीमत्र नरो ॥ ऋ १.६७.२ ॥

(गुहा निषीदन्) मानव के हृदय-गुफा में रहने वाले ईश्वर को, (विन्दन्तीम् अत्र नरः) साधना में लीन मनुष्य इसी जन्म में प्राप्त कर लेते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि उसे अन्यत्र खोजने के लिए जाने अथवा प्राप्त करने के लिए भटकने की कदापि आवश्यकता नहीं है।

अग्निधिया स चेतति ॥ ऋ. ३.११.३ ॥

(अग्नि) सर्व-उन्नायक एवं प्रकाशक (सः) वह परमेश्वर (धिया) ध्यान करने से (चेतति) सिद्ध-प्राप्त किया जाता है। वह साकार नहीं है, जिसे बाहरी नयनों से देखा जा सके। वह अदृश्य-निराकार होने से, योग-साधना से अनुभूत होता है।

कविमग्निमुप स्तुहि ॥ ऋ. १.१२.७ ॥

हे मानव! (कविम्) कवीश्वर-क्रान्तदर्शी,(अग्निम्) सृष्टि-यज्ञ के विस्तारक-प्रकाशक प्रभुवर के (उप स्तुहि) समीपस्थ-सन्निकट बैठ करके, उसकी स्तुति कर। स्वात्मा के अज्ञानान्धकाररूपी परदे को आत्म-प्रकाश से हटा करके, उस प्रियतम का सान्निध्य अथवा दिव्य-दर्शन होता है।

पश्यतेमं इदं ज्योतिस्मृतं मर्त्येषु ॥ ऋ. ६.९.४ ॥

हे मरणशील मनुष्यों! स्वयं के अन्तःकरण में अवस्थित; (इदम् अमृतम् ज्योतिः पश्यत) उस परमात्मा एवं आत्मा की कदापि न मरने वाली ज्योति का दर्शन कीजिए। यहां यह समझाया गया है कि मानव का शरीर बनता, मिटता है; किन्तु

ज्योक् व सूर्य दृशे *॥ ऋ.१०.५७.४ ॥*

(ज्योकच) हे मनुष्य तेरी दीर्घायु हो एवं तू (सूर्यं दृशे) सूर्य का दर्शन करता रहे। वेद के इस अति सूक्ष्म उपदेश का यह भाव है कि ब्रह्ममुहुर्त्त में उठने एवं उदित सूर्य का दर्शन करने से तन-मन पर जो सात्त्विक प्रभाव पड़ता है, उससे स्वास्थ्य लाभ के साथ स्वतः ही दीर्घायु की प्राप्ति होती है। प्राकृतिक चिकित्सा की भी यह एक सरल-सफल पद्धति है; जो कि आचरणीय वरणीय है।

भद्रायां ते रणयन्त सन्दृष्टौ *॥ ऋ. ६.१.४ ॥*

हे सर्वद्रष्टा परमेश्वर! (ते भद्रायाम्) सर्वदा कल्याणकारी तेरे स्वरूप (सन्दृष्टौ रणयन्त) का दर्शन करते हुए हम रमण करें। सर्वद्रष्टा परमेश्वर जीवों की प्रत्येक गतिविधि को जानता है एवं इस वास्तविकता से सुपरिचित आस्तिक जन की यह कामना है कि वह उसका दिव्य-दर्शन करके आनन्दित रहे।

अयमस्मि जरितः पश्य मेह *॥ ऋ. ८.१००.४ ॥*

परमात्मा के सर्वव्यापी-सर्वान्तर्यामी स्वरूप पर शंका करने वाले स्तोता-साधक को स्पष्ट किया गया है (जरितः) हे 'प्रिय भक्त! (अयमस्मि) मैं ही यहां-वहां-सर्वत्र विद्यमान हूँ। (पश्य मा इह) मैं तेरी आत्मा में भी अवस्थित हूँ, अतः तू मुझे वहीं देख; एवं उसके लिए इधर-उधर भटकने-खोजने की आवश्यकता नहीं है।

ज्योगेव दृशेम सूर्यम् *॥ अथर्व. १.३१.४ ॥*

हम (ज्योक् एव) चिरकाल-दीर्घायु तक (सूर्यम्) सूर्य को (दृशेम्) देखें। इस श्रेष्ठ कामना का व्यावहारिक पक्ष यह हैं कि हम यज्ञ-याग सेवा-सहायता तथा साधना-अराधना एवं ज्ञान-भक्ति मय जीवन जीते हुए, शतवर्ष पर्यन्त तक सूर्य का

दर्शन करें, अर्थात् उसके समान निरन्तर गतिशील एवं कर्त्तव्य पथारूढ़ रहें।

ध्रुवं ज्योतिर्निहितं दृशये कम् ॥ ऋ. ६.९.५ ॥

(कम्) यह सुखकारी (ध्रुवम् ज्योतिः) अविनाशी ज्योति, (दृशये निहितम्) आत्मदर्शन के लिए, मानव के शरीर में स्थापित है। यह एक अचम्भा है कि जीव के नाशवान् शरीर में, यह नाश न होने वाली अमर ज्योति उस में अवस्थित है। उसे सावधान किया गया है कि अन्तर्दृष्टि से आत्मस्थ इस ज्योति का दर्शन करें क्योंकि भौतिक पदार्थों की तुलना में ये अभौतिक ज्योति परम कल्याणी है।

बेनस्तपश्यन्निहितं गुहा सत् ॥ यजु ३२.८ ॥

(गुहा निहितम्) मानव की आत्मगुहा-अन्तःकरण में अवस्थित, (तत्सत्) उस नित्य सत्यस्वरूप परमात्मा को, (वेनः पश्यत्) विद्वान्, वेदवेत्ता एवं ज्ञानीजन ही ज्ञानदृष्टि से देख सकते हैं।

तं त्वा देवासोऽजनयन्त देवं वैश्वानर ज्योतिरिदार्याय

॥ ऋ. १.५९.२ ॥

(वैश्वानर) हे विश्वविनायक! हे विश्वदेव! (तम् त्वा) आप अपनी उस (देवम् ज्योतिः) सर्व दिव्यज्योति, ज्ञानदीप्त को (देवासः आर्याय) देवता स्वरूप, श्रेष्ठ जन के लिए सदैव (इत् अजनयन्त) प्रकट करते हैं अथवा, देव-दिव्य, आर्यजन अपनी अविचल योग साधना से, उस विश्वदेव की परमदिव्य ज्योति को स्वान्तः में प्रकट प्रकाशित एवं साक्षात्-दर्शन करते हैं।

॥ **शमित्योम्** ॥

तहरीर (लेखन) के क्षेत्र में पं. लेखराम के उत्तराधिकारी

डॉ. भवानी लाल भारतीय

आबालवृद्ध आर्यों के दिल और दिमाग पर पं लेखराम जी का विशेष स्थान है। वैदिक धर्म प्रचार की वह तड़प, अपने लहू से ऋषि दयानंद का चरित्र लेखन और अंत में उन के रक्त/रंजित बलिदान का मूल्य कौन चुकाएगा। हम सब मिलकर भी उन का सम्यक आकलन नहीं कर सकते। पं. लेखराम ने 39 वर्ष के अपने अल्पवय में जितना कार्य किया उतना कार्य हम लाखों आर्य समाजी मिलकर भी नहीं कर पा रहे हैं। पं. लेखराम का उपदेश तथा लेखन का जीवन मात्र 15-16 वर्ष का रहा है। उन्होंने ऋषि जीवन चरित्र के एक हज़ार पृष्ठ लिखे। 'कुलियात आर्य मुसाफ़िर' के तीन खंड के अतिरिक्त उन की छोटी बड़ी पुस्तकों की संख्या बहुत अधिक है। अपनी मृत्यु शय्या से आर्यों के नाम संदेश में पं. लेखराम ने कहा था - "तकरीर और तहरीर का काम बंद नहीं होना चाहिए।"

पं. लेखराम के लेखन के उत्तराधिकारी हुए डॉ. भवानी लाल भारतीय का लेखन 1949 में आरंभ हुआ। उन की प्रथम रचना 'ऋषि दयानंद और अन्य भारतीय धर्माचार्य' 1949 में छपी। डॉ. भवानी लाल भारतीय की अनेक रचनाओं में 1983 में ऋषि निर्वाण शताब्दि पर प्रकाशित (1) ऋषि दयानंद का शोधपूर्ण जीवन चरित्र (2) नवजागरण के पुरोधा दयानन्द सरस्वती, (3) श्रद्धानन्द ग्रंथावली (11 "खंड") (4) पं. लेखराम रचित स्वामी दयानन्द के बृहद् जीवन चरित्र का आलोचनात्मक सम्पादन (5) ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज की संस्कृत साहित्य को देन (6) आर्य समाज विषयक साहित्य का परिचय (7) आर्य समाज का इतिहास (पाँचवां भाग), (8) आर्य लेखक कोश (9) स्वामी दयानन्द, व्यक्तित्व विचार एवं मूल्यांकन तथा "स्वामी दयानन्द पश्चिम की दृष्टि में" प्रमुख हैं। अब तक उन की प्रकाशित पुस्तकों की संख्या 125 है। आर्य पत्रिकाओं में प्रकाशित सहस्रों लेखों की बात दीगर है।

ज्वलंत कुमार शास्त्री

लेखक का परिचय

सादगी एवं विनम्रता के पुञ्ज श्री विश्वामित्र सत्यार्थी जी का जीवन धर्ममय है। वह हरियाणा प्रदेश के राजकीय उच्च विद्यालय के मुख्याध्यापक के पद से सेवा-निवृत्त हैं।
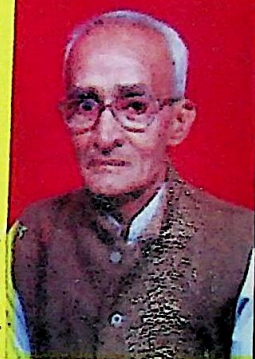
हरियाणा प्रदेश सेवाभारती के आप एक दशक तक शिक्षा संस्कार प्रमुख रहे। आप आर्यसमाज के प्रति निष्ठावान् एवं सामाजिक कार्यों में समर्पित हैं। महर्षि दयानन्द योगधाम फ़रीदाबाद के श्री स्वामी दिव्यानन्द सरस्वती अध्यक्ष एवं श्री सत्यार्थी जी अनेक वर्षों तक कर्मठ मंत्री रहे।

इस पुस्तक से पूर्व आपकी कई पुस्तकें मातृमान्, पितृमान्, आचार्यवान्, मनुर्भव, अध्यात्म प्रसाद, गायत्री गरिमा, स्वस्ति सुपथ, मृत्युञ्जय, अध्यात्मोपचार, अग्निमय साधना, याज्ञिक दृष्टि, भूमिपुत्र एवं प्राण को प्रणाम बहुत प्रशंसनीय सिद्ध हुई हैं।

इनकी नई कृति "इच्छाओं का स्वरूप" जिसका प्राक्कथन श्रद्धेय स्वामी दिव्यानन्द सरस्वती ने लिखा है, वो भी प्रकाशित हो चुकी है।

साहित्य-सेवी एवं लेखनी के धनी, श्री सत्यार्थी पर ईश्वर की अपार कृपा है। परमपिता परमात्मा से प्रार्थना है कि वह आपको स्वस्थ, स्वाध्यायशील, प्रसन्नचित्त रखें तथा दीर्घायु प्रदान करें।

–रवीन्द्र कुमार मेहता
अध्यक्ष, सरस्वती साहित्य संस्थान,
दिल्ली-110092